प्रेमचन्द्र 'महेश'

सम्राट अशोक

प्रेमचन्द्र 'महेश'

नयी दिल्ली-110002

दो शब्द

यह पुस्तक सम्राट अशोक की महत्ता से परिचित कराने के साथ ही साथ निम्नलिखित दृष्टिकोणों को लेकर लिखी गई है।

(1) मौर्ययुगीन भारत के परिचय के साथ-साथ सम्राट अशोक की राज्य कालीन परिस्थितियों, घटनाओं, ऐतिहासिक तथ्यों तथा तत्संबंधी लोकगाथाओं से परिचय कराने का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

(2) अशोक द्वारा स्थापित विभिन्न स्तम्भों, स्तूपों और शिलालेखों के निर्माण की पृष्ठभूमि से अवगत कराने का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

(3) अशोक के स्तम्भों, स्तूपों और शिलालेखों की मुख्य-मुख्य बातों को घटनाओं के माध्यम से समझाने की चेष्टा की गई है।

(4) विश्वबंधुत्व, विश्वशांति और विश्वसेवा, युद्धों का बहिष्कार (भेरी विजय के स्थान पर धर्म विजय), मानवमात्र का कल्याण, राष्ट्र के लिए एक भाषा की आवश्यकता, सदाचार, बुद्ध और पंचशील तथा अहिंसा के सिद्धांत जैसे प्रमुख प्रश्नों की महत्ता को स्थापित किया गया है।

(5) अशोककालीन भारतीय संस्कृति का आदान-प्रदान, बौद्धधर्म के प्रचार हेतु संसार भर में भेजे गए सांस्कृतिक मण्डलों का परिचय और महेन्द्र तथा संघमित्रा की लंका-यात्रा का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

उपरोक्त दृष्टिकोणों को कथा-शैली के माध्यम से सरल और सरस भाषा में नवसाक्षरों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक की कथा ऐतिहासिक है, जिसे मनोरंजक बनाने के लिए कल्पना का आश्रय लिया गया है।

इस पुस्तक के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। पात्रों से संबंधित घटनाएँ इतिहास, लोकगाथाओं और कल्पना के योग पर आधारित हैं।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता मिली है—

(1) डॉ. भण्डारकर कृत—अशोक।
(2) डॉ. हरिचन्द्र सेठ कृत—अशोक।
(3) डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी कृत—अशोक।
(4) डॉ. भगवती प्रसाद पंथारी कृत—अशोक।
(5) विन्सेन्ट स्मिथ कृत—अशोक।
(6) यदुनन्दन कपूर कृत—अशोक।
(7) जनार्दन भट्ट कृत—अशोक।
(8) करुणापति तिवारी कृत—मौर्यकालीन भारत का इतिहास।

अतः मैं इन सभी पुस्तकों के लेखकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं। इस पुस्तक में अशोक के मुख्य-मुख्य शिलालेखों और स्तम्भो के उद्धरण जो यथास्थान दिए हैं, वे भारत सरकार के पब्लिकेशन्स डिवीजन द्वारा प्रकाशित 'अशोक के धर्मलेख' (ले. : जनार्दन भट्ट) नामक पुस्तक से लिए गए हैं। इन उद्धरणों से संबंधित बातें फुट-नोट में नीचे लिख दी गई हैं।

इस पुस्तक में जो यथा-स्थान विभिन्न आकार-प्रकार के चित्र उनके भाव सहित दिए गए हैं; वे कथा को बोधगम्य, आकर्षक और रुचिकर बनाने के ध्येय से दिए गए हैं।

भारत में श्रीलंका के हाई कमिश्नर महोदय ने मुझे इस पुस्तक के लिए अनुराधापुर के महाविहार में श्री जयमहाबोधि का जो चित्र प्रदान किया है उसके लिए मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन किए बिना नहीं रह सकता।

यदि पुस्तक को इसके पाठकों ने अपनाया तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।'

—प्रेमचन्द्र महेश

67, पुराना बाजार,
हापुड़ (उत्तर प्रदेश)
15 दिसम्बर, 1962

1

पटना नगर के स्थान पर प्राचीन काल में सोन और गंगा नदी के संगम पर पाटलिपुत्र नाम का एक नगर बसा हुआ था। यह नगर प्राचीन भारत के प्रमुख नगरों में से था। इस नगर की लंबाई दस मील और चौड़ाई लगभग दो मील थी। इस नगर के चारों ओर लकड़ी की चारदीवारी थी। इस दीवार के बाहर की ओर 600 फीट चौड़ी और 45 फीट गहरी एक खाई थी। इस खाई में सोन नदी का जल भरा रहता था। नगर में अंदर जाने के लिए इस दीवार में 64 फाटक चारों दिशाओं में बने हुए थे। नगर की रक्षा के लिए इस दीवार के ऊपर 570 बुर्ज थे। इन बुर्जों और फाटकों में अनेक सैनिक सशस्त्र पहरा दिया करते थे। साथ ही इस लकड़ी की दीवार में से तीर चलाने के लिए अनेक छेद थे।

यह विशाल नगर मगध राज्य की राजधानी था। संसार के हर भाग से इसका संबंध था। देश-विदेश के व्यापारी इस नगर में सुंदर-सुंदर वस्तुएँ खरीदने आया करते थे। इस नगर की शोभा देखते ही बनती थी। नगर में लकड़ी के ऊँचे-ऊँचे भवन थे। इन भवनों की दीवारों में अनेक प्रकार के अमूल्य हीरे और जवाहरात जड़े रहते थे। नगर के बीचोंबीच राजमहल बना हुआ था, जो उस समय के कला-कौशल का जीता-जागता रूप था। इस राजमहल को देखकर फाहियान नामक एक चीनी यात्री भौंचक्का सा रह गया था। उसने लिखा है—"यह राजमहल मनुष्यों द्वारा बनाया ही नहीं जा सकता। इस राजमहल को तो देवताओं ने ही बनाया है। यह संसार के राजमहलों में सबसे सुंदर है।" इस प्रकार मगध राज्य की राजधानी की शोभा अपार थी।

अजातशत्रु नाम के एक राजा ने इस नगर को बसाया था। जब अहिंसा और शांति के अवतार भगवान बुद्ध इस नगर में पधारे तब उन्होंने अजातशत्रु को आशीर्वाद देते हुए कहा था : "यह नगर एक दिन महान नगर बनेगा। भारतवर्ष के गौरव और समृद्धि का केंद्र बनेगा। भारतवर्ष के महान नगरों में इसकी गणना होगी।" और अनेक वर्षों के बाद भगवान बुद्ध का यह आशीर्वाद साकार हो उठा।

इसी सुंदर राजमहल में आज से लगभग 2300 वर्ष पूर्व बिंदुसार नाम के एक सम्राट का शासन था। वह मौर्य वंश का था। उसका राज्य उत्तर में अफ़गास्तिान से लेकर दक्षिण में मैसूर राज्य तक फैला हुआ था। वह वीर और कुशल योद्धा था। उसके शत्रु उससे काँपते थे। इसी कारण वह 'अमित्रघात' (शत्रुओं के लिए घातक) के नाम से भी सारे संसार में प्रसिद्ध था।

बिंदुसार के 16 रानियाँ थीं। इन रानियों से उसके 101 पुत्र उत्पन्न हुए। उसके सबसे बड़े पुत्र का नाम सुमन था और उससे छोटे का नाम था अशोक। सुमन अपने पिता के राज्य की उत्तरी सीमा की देखभाल करने के लिए तक्षशिला में और अशोक दक्षिणी सीमा की देखभाल करने के लिए उज्जैन में रहता था।

सुमन स्वभाव से ही विलासी था। उसने राजकाज का सारा काम अपने मंत्रियों तथा सेनापतियों पर छोड़ दिया था। प्रजा के सुख-दुःख और राज्य की रक्षा से वह बिल्कुल बेखबर हो चुका था। नाचने-गाने और शराब पीने में ही वह अब अपना सारा समय खोता था। मंत्रियों और सेनापतियों को सुमन की इस बेखबरी से फायदा उठाने का अच्छा अवसर हाथ लगा। सभी ने मिलकर प्रजा को अनेक प्रकार के कष्ट देने शुरू कर दिए। प्रजा कष्टों से घबरा गई और राज्य के प्रति विद्रोह कर उठी।

प्रजा का विद्रोह मंत्रियों और सेनापतियों के दबाए न दबा। अंत में स्थिति को काबू से बाहर देखकर यह खबर पाटलिपुत्र पहुँचाई गई।

पाटलिपुत्र में जब यह खबर पहुँची तब सम्राट क्रोध से आग-बबूला हो उठे। उनकी भौंहें तन गईं और आँखें लाल हो गईं। वे अपने महामंत्री राधागुप्त को आदेश देते हुए बोले, "मगध की संसार भर में प्रसिद्ध सेना को तुरंत कूच करने की आज्ञा दी जावे। मैं खुद ही जाकर वहाँ के विद्रोह

को शांत करूँगा। देखूँगा कि 'अमित्रघात' का कौन मुकाबला करता है !''

सम्राट के शांत होने पर महामंत्री राधागुप्त ने कहा, ''किंतु देव. मेरी एक विनती को आप जरूर मानें। वह यह कि आप अस्वस्थ हैं। आपका वहाँ जाना ठीक नहीं। आप किसी मंत्री को वहाँ भेज दीजिए।''

''किंतु महामंत्री, मगध की सेना किसी योग्य व्यक्ति के साथ ही भेजी जा सकती है। इस समय योग्य व्यक्ति के न होने पर ही मैं सेना को लेकर तक्षशिला जाऊँगा।'' सम्राट ने उत्तर दिया।

सम्राट के उत्तर को सुनकर महामंत्री राधागुप्त काफी देर तक मौन रहने के बाद बोले, ''सम्राट, आपका छोटा पुत्र राजकुमार अशोक वीर और कुशल व्यक्ति है। आप मेरा अनुरोध स्वीकार कर अशोक को ही तक्षशिला भेजें।''

महामंत्री राधागुप्त के मुख से अशोक का नाम सुनकर सम्राट प्रसन्न हो उठे। उन्होंने तुरंत ही अपने दूत को पत्र देकर अशोक को उज्जैन से बुलाया। अशोक पिता के पत्र को पाते ही तुरंत पाटलिपुत्र पहुंचा। वहाँ से जगत प्रसिद्ध मगध की विशाल सेना को लेकर वह तक्षशिला जा पहुँचा।

❄ ❄ ❄

अशोक के तक्षशिला में आने की सूचना नगर निवासियों ने सुनी। वे अशोक के स्वागत में अपने नगर से बाहर निकल पड़े। सभी ने अपने हाथों में मंगलघट ले अशोक का स्वागत किया। अशोक ने स्वागत का उत्तर देते हुए कहा, ''तक्षशिला के निवासियो, मैं राजकुमार अशोक आज तुम्हारे राज्य में अतिथि बनकर आया हूँ। आप सभी ने जो अपने नगर से बहुत दूर, बाहर आकर मेरा स्वागत किया, उसके लिए मैं आप सभी का आभारी हूँ। किंतु अतिथि होने के साथ-साथ मैं विद्रोहियों का शत्रु भी हूँ। मैं विद्रोह के कारण को समझने की कोशिश में सफल नहीं हो पाया। पता नहीं यहाँ इतने महान नागरिकों के रहते हुए भी विद्रोह क्यों हुआ? मेरे पिता सम्राट बिंदुसार आपको अपनी आदर्श प्रजा मानते हैं। किंतु फिर भी न जाने क्यों आप अपने पिता के समान पालन करने वाले सम्राट के विरुद्ध हैं?''

अशोक की बातों को सुन तक्षशिला के निवासियों का एक समूह उसके निकट तक पहुँचा और बोला, ''राजकुमार अशोक, तक्षशिला के निवासी न तो आपके विरुद्ध हैं और न ही अपने सम्राट के। हम अपने राज्य के शासक और अधिकारियों के विरुद्ध हैं। हम उनको तथा युवराज सुमन को नहीं चाहते, क्योंकि वे हमारे कष्टों को दूर नहीं करते। हम आपको अपना शासक बनाना चाहते हैं।''

अशोक ने अपने विशेष दूत द्वारा तक्षशिला के सभी समाचार सम्राट बिंदुसार को पाटलिपुत्र लिख भेजे। पाटलिपुत्र से सम्राट का उत्तर आया, आज से राजकुमार अशोक तक्षशिला के शासक बनाए जाते हैं। युवराज सुमन को पाटलिपुत्र वापस भेज दिया जाए।

सम्राट की आज्ञा का तुरंत पालन किया गया और सुमन पाटलिपुत्र लौट गया।

❄ ❄ ❄

युवराज सुमन पाटलिपुत्र में आकर भी अपनी आदतों को सुधार न सका। उसके चरित्र में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न देखकर सम्राट चिंतित रहने लगे। किंतु चिंता करने से मिलता क्या है। समय के साथ-साथ सम्राट की चिंता भी बढ़ती गई। उन्हें अपनी मृत्यु के बाद सुमन के हाथों मगध साम्राज्य के नष्ट होने का अंदेशा रहने लगा। उन्होंने सुमन को अनेक बार समझाया-बुझाया। पर, सब व्यर्थ गया। किसी भी प्रकार का परिवर्तन उसमें दिखाई नहीं पड़ा। आखिर, एक दिन सम्राट इसी चिंता में चल बसे।

सम्राट की मृत्यु के बाद मगध के सिंहासन पर बैठने का अधिकार सुमन को मिलता, क्योंकि वह उनका बड़ा पुत्र था। साम्राज्य के सारे मंत्री सुमन के विरुद्ध थे। सभी मंत्रियों ने जिनकी संख्या पाँच सौ थी, मिलकर एक सभा की। उसमें सबने एकमत होकर निश्चय किया—सुमन मगध के राजकाज को नहीं चला सकता। अशोक ही राजकाज को चलाने की शक्ति रखता है। अतः हम अशोक को ही अपना राजा चुनते हैं।

महामंत्री ने मंत्री-सभा के इस निश्चय की सूचना अपने दूत के हाथ तुरंत ही अशोक के पास तक्षशिला भेज दी।

❄ ❄ ❄

दूत पत्र लेकर तक्षशिला पहुँचा। दूत को देखते ही अशोक का मन अनेक शंकाओं से भर उठा। अनेक प्रकार की भली-बुरी शंकाएँ उसके मन में उठने लगीं। दूत ने अभिवादन कर महामंत्री राधागुप्त का पत्र अशोक को दिया। इस पत्र में लिखा था, "राजकुमार अशोक, मगध सम्राट बिंदुसार की मृत्यु पर शोक करने का अवसर नहीं है। आज मगध के विशाल साम्राज्य की रक्षा करने वाला कोई नहीं है। सुमन विलासी है, वह राजकाज के अयोग्य है। मगध का सिंहासन भी खाली नहीं रखा जा सकता। इसलिए मगध के साम्राज्य को आकर सँभालो।"

अशोक ने महामंत्री के भेजे पत्र को पढ़ा। पढ़ते ही उसका मन शोक से भर गया। कुछ क्षणों के बाद ही उसके मस्तिष्क में विचार घूम उठे

और वह आप-ही-आप बड़बड़ा उठा, 'नहीं, मगध के सिंहासन पर बैठने का अधिकारी तो मेरा बड़ा भाई सुमन है। तो क्या मुझे सिंहासन के लिए भाई से युद्ध करना पड़ेगा ? नहीं, मैं बड़े भाई से युद्ध नहीं करूँगा ! ...पर, इस विशाल साम्राज्य का क्या होगा ? क्या, सारे साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होने दूँ !...और प्रजा में अशांति फैलने दूँ। नहीं, प्रजा में सुख और शांति बनाए रखने के लिए मैं गृह-कलह की नीति को भी अपनाऊँगा। विलासी और अनाचारी को मिटाने की ही तो नीति कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में अर्जुन को बतलाई थी। और फिर भूमि तो वीरों के लिए है; न कि सुमन जैसे विलासी और कायर के लिए। इसलिए सुमन का विरोध करना ही मेरा कर्त्तव्य है।' यही सब सोचते हुए अशोक ने तुरंत ही महामंत्री राधागुप्त के नाम एक पत्र लिखा—"महामंत्री, मैं मंत्रीसभा के मत से सहमत हूँ। तक्षशिला के वीर सैनिकों को लेकर शीघ्र ही पाटलिपुत्र पहुँच रहा हूँ।"

युवराज सुमन को जब यह समाचार मालूम हुआ तब उसे यकायक विश्वास नहीं हुआ। पर, जब उसे गुप्तचरों से अशोक के सेना सहित आने की खबर मिली, तब वह हक्का-बक्का सा रह गया। उसके होश उड़ गए। उसने तुरंत ही अशोक के पास खबर लिख भेजी—"भाई अशोक, तुम अपनी सेना को नगर के बाहर रखकर ही नगर में प्रवेश कर सकते हो।"

अशोक इस खबर को सुनते ही भड़क उठा। उसकी नसों में जोश भर गया। उसने उत्तर में सुमन को लिख भेजा—"मैं सेना सहित नगर में प्रवेश करने के लिए नहीं आया हूँ, बल्कि सिंहासन को भी लेने आया हूँ। यदि तुममें शक्ति है तो मेरा सामना करो, नहीं तो मगध का सिंहासन मुझे सौंप दो।"

सुमन उत्तर पढ़कर हड़बड़ा गया। उसे कुछ भी सूझ न पड़ा। अंत में सेना को लेकर अशोक का सामना करने चल पड़ा। पाटलिपुत्र के उत्तर में गंगा और गंडक नदी के संगम पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। घमासान युद्ध हुआ। सुमन मारा गया। अशोक मगध के साम्राज्य का अधिकारी बना।

2

मगध के राजसिंहासन पर अधिकार करने के बाद अशोक को चार साल अपने अन्य भाइयों से झगड़े निपटाने में लगे। राज्य के शत्रुओं से लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसने सारी शासन-व्यवस्था को भी बदला। सभी स्थानों पर उसने प्रजा के सुखों और हितों की रक्षा करने वाले अधिकारियों की नियुक्तियाँ कीं। इन सब कामों में उसे चेन से साँस लेने की भी फुरसत नहीं मिली। अतः उसका राजतिलक न हो सका।

चार साल बीतने के बाद एक दिन अशोक के राजतिलक का अवसर आ ही पहुँचा। अशोक की दो रानियाँ थीं। एक उज्जैन में रहती थी और दूसरी तक्षशिला में। उसने राजतिलक के अवसर पर उपस्थित होने के लिए उज्जैन की रानी देवी और तक्षशिला की रानी कारुवाकी को बुलाने के लिए दूत भेजे। पर दोनों ही रानियाँ नहीं आईं। दोनों ने मगध के सिंहासन पर बैठना अस्वीकार कर दिया। उज्जैन में रहने वाली रानी देवी ने दूत के हाथ लिख भेजा, "मैं मगध के विशाल साम्राज्य की महारानी बनना नहीं चाहती। मैं तो यहीं अपना जीवन शांति से बिताना चाहती हूँ। हाँ, मैं दूतों के साथ अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को आपकी सेवा में भेज रही हूँ।"

दूसरी रानी कारुवाकी ने भी अशोक को लिख भेजा था, "राजा की भाँति रानी को भी चतुर होना चाहिए। पर मैं अनपढ़ हूँ और चतुर भी नहीं हूँ। इस कारण मैं महाराज, महारानी बनने के योग्य नहीं हूँ। आपका साम्राज्य उन्नति करे यही मेरी इच्छा है। अपने पुत्र तीवर को यदि मैं योग्य बना सकी तो आपकी सेवा में भेज दूँगी।"

अशोक अपनी दोनों रानियों के पत्रों को पढ़कर बहुत दुःखी हुआ।

❄ ❄ ❄

आज अशोक का राजतिलक होने वाला था। राजतिलक की खुशी में सारा नगर झूम रहा था। पाटलिपुत्र के नागरिकों ने नगर के कोने-कोने को सजाया

अशोक का राजतिलक

था। नगर के हर घर के द्वार पर वन्दनवार बँधी हुई थी। स्थान-स्थान पर मंगलगान और बधाइयाँ गाई जा रही थीं। सारा नगर अशोक जैसे कुशल सम्राट को पाकर फूला नहीं समा रहा था। नगर के राजमार्ग की शोभा देखते ही बनती थी।

आज पाटलिपुत्र की राजसभा में भी अपार भीड़ थी। सभी उपस्थित सभासदों, मंत्रियों और प्रजा के उपस्थित लोगों के चेहरों पर मुसकान और

हृदय में जोश उमड़ रहा था। इसी बीच राजपुरोहित ने अशोक को राजसिंहासन पर बैठा कर राजतिलक किया। उपस्थित जनसमूह ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ 'सम्राट अशोक की जय' का जयजयकार किया।

सभी के शांत होने पर सम्राट अशोक सिंहासन से मुस्कराते हुए उठे और बोले, "नागरिको और सभासदो! मैं अपनी प्रजा को पुत्र के समान समझता हूँ। मैं प्रजा के लिए कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राजकाज करूँ पर मुझे संतोष नहीं होता। मैं सब लोगों का हित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पर सब लोगों का हित, परिश्रम और राजकाज को ठीक प्रकार से किए बिना नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि में प्रजा का हित करने से बढ़कर और कोई कार्य है ही नहीं। प्रजा के हित के लिए जो कुछ परिश्रम मैं कर सकता हूँ, वह इसलिए कि प्रजा के धन का उपयोग जो मैं ऋण के समान करता हूँ उससे उऋण हो जाऊं। जब प्रजा को इस लोक में सुख पहुँचने के साथ-साथ परलोक में भी स्वर्ग मिलेगा तभी मेरे परिश्रम की सफलता है। पर यह कार्य अधिक परिश्रम के बिना बहुत कठिन है ?[1] आपने मुझे अपना राजा चुनकर जो उपकार मुझ पर किया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं आज राजतिलक के पुण्य अवसर पर आप सभी के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो राजकाज के आदर्श मेरे पिता बिंदुसार और दादा चन्द्रगुप्त ने बनाए थे, उन्हें मैं बनाए रहूँगा। मेरे इस विशाल साम्राज्य में भारतवर्ष के जो राज्य अभी तक नहीं मिल सके हैं, उन्हें मिलाऊँगा। यदि वे राज्य अपने आप मेरी अधीनता स्वीकार कर लेंगे तो मैं उनसे प्रसन्न रहूँगा और यदि वे ऐसा करने में तनिक भी आनाकानी करेंगे, तो तलवार के बल पर उनको मेरे साम्राज्य में सम्मिलित होना ही पड़ेगा। देश की एकता को बनाए रखने के बारे में मैं आज एक और घोषणा करता हूँ कि आज से सारे राष्ट्र की पाली राष्ट्रभाषा होगी। इस प्रकार विशाल देश के निवासी एक-दूसरे के विचारों को सहज ही में समझ सकेंगे। सारे देश का एक ही धर्म होगा, जिससे हम अपने पुरखों की सभ्यता को जीवित रख सकेंगे। देश की एकता को भंग करने के लिए यदि किसी ने भी आँख उठाई, तो उसका मुँहतोड़ उत्तर दिया जाएगा।"

---

1. अशोक का छठा शिलालेख

सम्राट अशोक का भाषण समाप्त होने पर 'सम्राट अशोक की जय' के जयजयकार से आकाश गूँज उठा। इसी बीच में एक दूत सम्राट अशोक के राजदरबार में आया। उसने सम्राट का अभिवादन कर एक पत्र दिया। सम्राट ने पत्र की मुहर तोड़ उसे पढ़ना शुरू किया। पत्र के पढ़ते ही सम्राट के चेहरे की मुसकान उड़ गई। गम्भीरता छा गई। यह देख सारे सभासद चिंतित हो उठे। कुछ पलों की शांति के बाद सम्राट बोले, "कलिंग राज्य के राजा का यह अभिमान से भरा पत्र है। वह मेरी अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहता। पर मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कलिंग देश को अपने साम्राज्य में मिलाकर रहूँगा, चाहे भयानक युद्ध ही क्यों न हो।"

सम्राट अशोक की वीरता से भरी घोषणा पर उपस्थित प्रजा ने जयजयकार की और फिर महामंत्री राधागुप्त ने कहा, "सम्राट, कलिंग-देश आपके दादा चंद्रगुप्त के समय विशाल मगध साम्राज्य का ही एक अंग था। आपके पिता बिंदुसार के समय वह किसी भाँति साम्राज्य से निकल गया और आज वह छोटा सा राज्य हमें चुनौती दे रहा है। यदि देखा जाए तो इस राज्य का हमारे साम्राज्य में न मिलना हमारे लिए कलंक है। हमारे साम्राज्य की सुरक्षा के लिए खतरा है। मगध की विशाल सेना की वीरता के लिए अपमान की बात है। कलिंग पर तो आपको अधिकार करना ही होगा सम्राट।"

महामंत्री के एक-एक शब्द को ध्यान से सुनकर सम्राट अशोक ने घोषणा की, "सभासदो ! महामंत्री राधागुप्त का कथन ठीक है। कलिंग राज्य के बढ़ते हुए अभिमान और सेना की शक्ति को हमें खत्म करना ही होगा। देश की सुरक्षा और उन्नति के लिए हमें खून की नदियाँ बहानी की पड़ेंगी। मगध के साम्राज्य को बढ़ाने के लिए हमें हिमालय की चोटियों को कंपाना ही होगा। हमारी सेना के सामने शत्रु की सेनाएं रुक न सकेंगी। वे उस तरह तितर-बितर होकर भागेंगी जैसे सूरज की किरणों से कुहरा भाग जाता है।"

सम्राट अशोक की घोषणा सभी ने सुनी। सभी ने परिस्थिति के अनुसार युद्ध की आवश्यकता को समझा। सारे साम्राज्य में रणभेरी बज उठी। सेना में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। और एक दिन सम्राट अशोक की सेना जयजयकार के साथ कलिंग-राज्य को जीतने निकल पड़ी।

3

उड़ीसा प्रांत में महानदी और गोदावरी नदियों के नीचे का जो प्रदेश है, वह प्राचीन काल में कलिंग राज्य के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ के निवासी वीर, स्वतंत्रता-प्रेमी और धनिक थे। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मगध की विशाल सेना से डटकर लोहा लिया।

महानदी कल-कल करती बह रही थी। उसके दोनों किनारों पर दो साम्राज्यों की सीमाएँ मिलती थीं। उसके उत्तरी किनारे पर विशाल मगध साम्राज्य था और दक्षिणी किनारे पर कलिंग देश स्थित था। इस नदी के दोनों किनारों पर दोनों साम्राज्यों की सेनाएँ डटी हुई थीं। दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध होता रहा। दोनों पक्षों में से किसी की भी हार-जीत का निर्णय न हो सका।

इधर युद्ध-काल में ही मगध के सैनिकों के पास रसद की कमी हो गई। रसद की तलाश में मगध के सैनिक कलिंग के निहत्थे ग्राम-निवासियों को मौत के घाट उतारने लगे। छोटे-छोटे बच्चों, बूढ़े स्त्री-पुरुषों, अबला नारियों पर वे मनमाने अत्याचार करने लगे। कलिंग के निवासी इन अत्याचारों से काँप उठे। सम्राट अशोक के नाम से ही उन्हें भय लगने लगा। अशोक उन्हें मनुष्य नहीं राक्षस दिखलाई पड़ने लगा और उसके सैनिक यम के दूत। छोटे-छोटे बच्चे अशोक का नाम सुनते ही भय से पीले पड़ जाते और रोने लगते। सम्राट अशोक और उसकी सेना का भय तथा भयानक अत्याचार सारे कलिंग देश में छा गए। युद्ध की अग्नि में कलिंग का धन-जन और कला-कौशल सभी कुछ नष्ट हो गया। हरा-भरा देश श्मशान बनने लगा।

अंत में धीरता से लड़ने पर भी कलिंग की सेना को हारना ही पड़ा।

पर कलिंग की सेना ने मगध की सेना के जो दाँत खट्टे किए वह मगध की सेना बाद तक भूल न सकी। जीत का समाचार सम्राट अशोक को सुनाया गया। वे अपनी जीत की खबर सुनते ही फूले न समाए। वे तुरंत ही हाथी पर सवार होकर कलिंग की राजधानी—तौसाली—की ओर चल पड़े।

कलिंग की राजधानी को जाते समय अशोक को युद्धभूमि से गुजरना पड़ा। अशोक को युद्धक्षेत्र में घुसते ही हाहाकार, चिल्लाने-चीखने, रोने-धोने और कराहने की भयानक आवाजें सुनाई दीं। इन आवाजों को सुनकर अशोक का हृदय पसीज उठा। जब सम्राट का हाथी आगे बढ़ा तो उन्होंने अपने चारों ओर युद्धभूमि में अट के अट पड़े लोथों और अनेक मनुष्यों को मरे पड़े देखा। यह दृश्य और भी भयानक था। युद्धभूमि में पड़े इन मनुष्यों में किसी का धड़ अलग पड़ा था, किसी के पैर कटे पड़े थे, किसी का मुँह कटा पड़ा था और कोई बाणों से बिंधकर छलनी हुआ था। युद्धभूमि लहू-लुहान थी। हर तरफ खून-ही-खून नजर आता था। खून का समुद्र हिलोरें मार रहा था।

जब सम्राट अशोक ने कलिंग की राजधानी में प्रवेश किया तब रात्रि

का भयानक अंधकार चारों ओर फैल चुका था। राजधानी के अंदर घुसते ही यह अंधकार और भी भयानक लगने लगा। कहीं प्रकाश नहीं था। चारों ओर दुःखभरी आवाजें ही सुनाई पड़ रही थीं। ऐसा लगता था जैसे हाहाकार ही सम्राट का स्वागत कर रहा हो।

सम्राट अशोक के राजधानी में प्रवेश करते ही मगध की विशाल सेना ने जयजयकार किया।

सम्राट अशोक ने कलिंग की राजधानी में पहुँच कर अपने मंत्रियों और सेनापतियों की एक सभा की। सभा में सम्राट ने अपने सैनिकों की प्रशंसा की।

इतने में ही "सम्राट अशोक की जय हो !" की जय-ध्वनि सुनकर सभी सभासद चौंक उठे। सबने देखा कि पीले वस्त्र पहने एक बौद्ध भिक्षु सम्राट का अभिवादन कर रहा है।

बौद्धभिक्षु के अभिवादन कर चुकने पर सम्राट अशोक ने पूछा, "भिक्षु, तुमको क्या चाहिए?"

"सम्राट, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि आपने लाखों मनुष्यों

का खून बहाकर, लाखों को आहत करके इस कलिंग देश पर जो विजय पाई है, क्या वह सच्ची विजय है ? क्या इस विजय से कलिंग देश का निर्माण हो सकेगा ? क्या यह विजय मानवता का विकास कर सकेगी ?''

भिक्षु के प्रश्न को सुन सम्राट की भौंहें तन गईं। उनकी आँखों से अंगारे बरसने लगे। सम्राट को क्रोधित जानकर सभी सभासद सावधान हो गए। महामंत्री राधागुप्त ने भिक्षु से कहा, ''भिक्षुवर, राजदरबार की मर्यादा को ध्यान में रखकर ही बोलो।''

महामंत्री राधागुप्त की बातों से भिक्षु तनिक भी भयभीत न हुआ। वह निडर होकर बोला, ''महामंत्री की जय हो ! मैं भिक्षु हूँ। सत्य कहना मेरा धर्म है। मैं अभी-अभी युद्धभूमि में कलिंग के लाखों कराहते लोगों को देखकर आया हूँ। मैं आपसे ही पूछता हूँ कि आप ने यह युद्ध करके क्या पाया ?''

महामंत्री ने कहा, ''भिक्षुवर, मैं फिर तुमको कहता हूँ कि अपनी वाणी पर संयम रक्खो। सँभलकर बोलो।''

भिक्षु ने उसी प्रकार निडर होकर उत्तर दिया, ''महामंत्री, सत्य को

सुनना हमेशा कठिन होता है। पर मैं सत्य को कहकर ही रहूँगा, चाहे आप मुझे किसी भी प्रकार का दण्ड दें।''

भिक्षु के शब्दों को सुनकर सम्राट अशोक तिलमिला उठे। वे क्रोधित होकर कठोर स्वर में बोले, ''इस भिक्षु को बंदी बनाकर कठोर दण्ड दो।''

सम्राट अशोक की आज्ञा को सुनकर वह भिक्षु खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला, ''महाराज, मैं मृत्यु से नहीं डरता। एक दिन सबको ही मृत्यु के मुख में जाना है। पर मैं आपसे पूछता हूँ कि आपने लाखों निवासियों को मृत्यु के मुख में क्यों धकेला ? क्या साम्राज्य बढ़ाने के लिए ! हा ! हा!! हा !!! आप श्मशान भूमि में अट के अट लगे लोथों के ढेरों पर राज्य करेंगे ? आप युद्ध से श्मशान बनी इस कलिंग-भूमि को जीत कर आज खुशियाँ मनाना चाहते हैं। ठीक है सम्राट, लाल-लाल लोहू से लाल हुई यह लहूलुहान धरती आपकी जीत का स्वागत करने को तैयार है। रोते मनुष्य आपकी विजय पर मंगल बधाइयाँ गा रहे हैं। आज तलवार की झनझनाहट और आपकी सेना के अत्याचार से उत्पन्न हुआ भय ही तो कलिंग में आपकी विजय पर मनाया जा रहा हर्ष है, आनंद है। हाँ सम्राट आपने अपनी जीत की खुशी में कलिंग की स्त्रियों के गालों पर चमकते मोती जैसे आँसुओं को ही तो लुटा डाला है। और, मुर्दे पड़े लाखों मनुष्य ही आपकी विजय के बाद हुई सच्ची शांति का सच्चा रूप दिखला रहे हैं सम्राट ! आप खूब खुशियाँ मनाइए ! आपको रोकता कौन है ?''

भिक्षु के तीखे वचनों को सुनकर अब सम्राट अशोक का रहा-सहा

धैर्य भी जाता रहा। उन्होंने तुरंत ही कठोर हो आज्ञा दी, ''इस दुष्ट भिक्षु को तुरंत ही खौलते तेल में डाल दो।''

आज्ञा पाते ही दो सैनिक भिक्षु को पकड़ कर ले गए। इधर सम्राट के मंत्री यश ने कहा, ''दुष्ट भिक्षु क्या जाने साम्राज्य बढ़ाने की नीति ! सम्राट, यदि युद्ध न हों तो साम्राज्य मिट जाएँ। साम्राज्यों का निर्माण युद्धों की छत्रछाया में होता है। युद्धों में मनुष्यों को तड़पाने में जो मज़ा आता है वह उनको मारने में नहीं आता। और फिर युद्धों से धरती पर सच्ची शांति की स्थापना भी तो होती है।''

मंत्री यश के भाषण के बाद सम्राट अशोक ने वीर सैनिकों को पुरस्कार बाँटे और फिर सभा समाप्त हो गई।

4

सम्राट अशोक अपने महामंत्री राधागुप्त से बातचीत कर रहे थे। उनकी बातें कलिंग के युद्ध के संबंध में चल रही थीं। इतने में ही एक सैनिक ने आकर कहा, "सम्राट ! महान अचरज की बात है कि खौलते तेल में डाल देने पर भी वह भिक्षु मरा नहीं। गर्म तेल उसके शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचा सका।"

सैनिक की बातें सुनकर सम्राट अशोक अचम्भे में पड़ गए। महामंत्री राधागुप्त को तो सैनिक की बातों पर कतई विश्वास नहीं आया। वे सम्राट अशोक से बोले, "सम्राट, खौलते तेल में जीवित रहना मनुष्य के बस से बाहर की बात है। मैं इस बात को सत्य नहीं समझता। चलिए आपके साथ इसकी सच्चाई देख लें।"

महामंत्री राधागुप्त और सम्राट अशोक खौलते हुए तेल के कढ़ाव के पास पहुँचे। इस तेल के कढ़ाव के चारों ओर भीड़ लगी हुई थी। सभी सैनिक भिक्षु की महिमा का गुणगान कर रहे थे। सभी के मुख पर अचम्भा और भिक्षु के प्रति श्रद्धा के भाव छाए थे।

सम्राट अशोक को आते हुए देखकर सैनिकों की भीड़ एक ओर हो गई। सम्राट खौलते तेल के कढ़ाव के समीप जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि ईंटों के चूल्हे पर विशाल तेल का कढ़ाव रखा है। तेल आग की तेज पलटें पाकर खूब खौल रहा है। खौलते हुए तेल पर उन्होंने भिक्षु को समाधि लगाए बैठे देखा। उसकी आँखें बंद थीं। उसके मुँह से 'नमो बुद्धाय' की मंद-मंद आवाज आ रही थी। खौलता हुआ तेल और आग की भयानक पलटें भिक्षु के शरीर को तनिक भी छू नहीं रही थीं।

सम्राट अशोक यह सब टकटकी लगाए काफी देर तक देखते रहे। यकायक उनके मन में भिक्षु के प्रति श्रद्धा पैदा हो गई। उन्होंने तुरंत ही आज्ञा दी, "आग को बुझा दो !" आज्ञा पाते ही आग बुझा दी गई।

सम्राट अशोक तुरंत ही तेल के कढ़ाव के निकट पहुँच कर बोले, "भिक्षुवर, क्षमा करो। मैं तुम्हारे साथ अत्याचार कर बैठा।" इतना कहकर सम्राट भिक्षु के सामने सिर झुका कर खड़े हो गए।

भिक्षु ने जब आँखें खोलीं तो उसने सम्राट अशोक को सिर झुकाए खड़े देखा। वह मुस्करा कर बोला, "सम्राट, तुमको अपनी शक्ति पर बहुत विश्वास था। पर आज तुम्हारी शक्ति की हार हुई। तुम अपनी शक्ति के आगे मंसार की शक्ति को तुच्छ समझते हो, यह तुम्हारी भूल

है। तुम अपनी इस शक्ति के द्वारा साम्राज्य का विस्तार करना चाहते हो, सो अनहोनी बात है। याद रखो सम्राट कभी भी तुम तलवार के बल से मनुष्य के हृदय को नहीं जीत सकते। उसके विचारों पर नहीं छा सकते। मनुष्य जाति को सुख और शांति नहीं दे सकते। हिंसा सबसे बड़ा पाप है। हिंसा से हिंसा ही पैदा होती है, इससे मानव का नाश होता है, कल्याण नहीं। सम्राट, यदि तुम अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहते हो तो हिंसा का सहारा न लो। मनुष्यों को मत सताओ। किसी को न सताना ही अहिंसा है। प्रेम और दया से मनुष्यों के हृदयों को जीतो। अहिंसा की नीति को अपनाकर मनुष्यों के विचारों में छाओ। तभी सम्राट, तुम मानव-कल्याण कर सकोगे। तभी धरती पर सच्ची शांति आ सकेगी। हिंसा और शस्त्रों के बल पर शांति तो केवल ढोंग है, धोखा है सम्राट !"

सम्राट अशोक को भिक्षु की सभी बातें अटपटी लगीं। वे कुछ समझ न सके। अतः बोले, "भिक्षुवर, मैं एक ऐसे विशाल साम्राज्य का निर्माण करना चाहता हूँ जिसमें रहने वाले सभी व्यक्ति प्रसन्न हों। सभी व्यक्ति एक-दूसरे के विचार समझ सकें अर्थात सभी एक भाषा को जानने वाले हों। सभी के रीति-रिवाज एक से हों, अर्थात सब एक धर्म को मानने वाले हों। यह कल्पना तलवार के बल पर ही साकार हो सकती है। तलवार से ही मेरे सोचे हुए सपने धरती पर जाग सकते हैं। और फिर मेरा मार्ग गलत थोड़े ही है। आप ही देख लो, संसार के बड़े-बड़े साम्राज्य तलवारों की छाया में बनते, पलते और चलते हैं। जो काम तलवार के जोर पर हो सकता है, वह बातों से थोड़े ही हो सकता है।"

सम्राट अशोक की सभी बातों को भिक्षु ने बड़े ध्यान से सुन उत्तर दिया, "सम्राट, जो साम्राज्य तलवार के द्वारा बनाए जाते हैं, वे जल्दी ही मिट जाते हैं। मिटने के बाद उनको कोई याद नहीं करता। तलवार के बल पर राज्य की तरफ से फैलाया धर्म स्थिर नहीं रहता। वह तभी तक चलता है जब तक तलवार चमकती है। तुम यदि अपने सपनों को साकार करना चाहते हो, तो तलवार को नहीं, प्रेम को अपनाओ। हिंसा को नहीं, अहिंसा को अपनाओ। सभी धर्मों का आदर करो। सभी धर्म अच्छे हैं। तभी तुम धरती पर स्वर्ग ला सकोगे। तभी तुम्हारा साम्राज्य युग-युगों तक इस धरती पर जीवित रहेगा।"
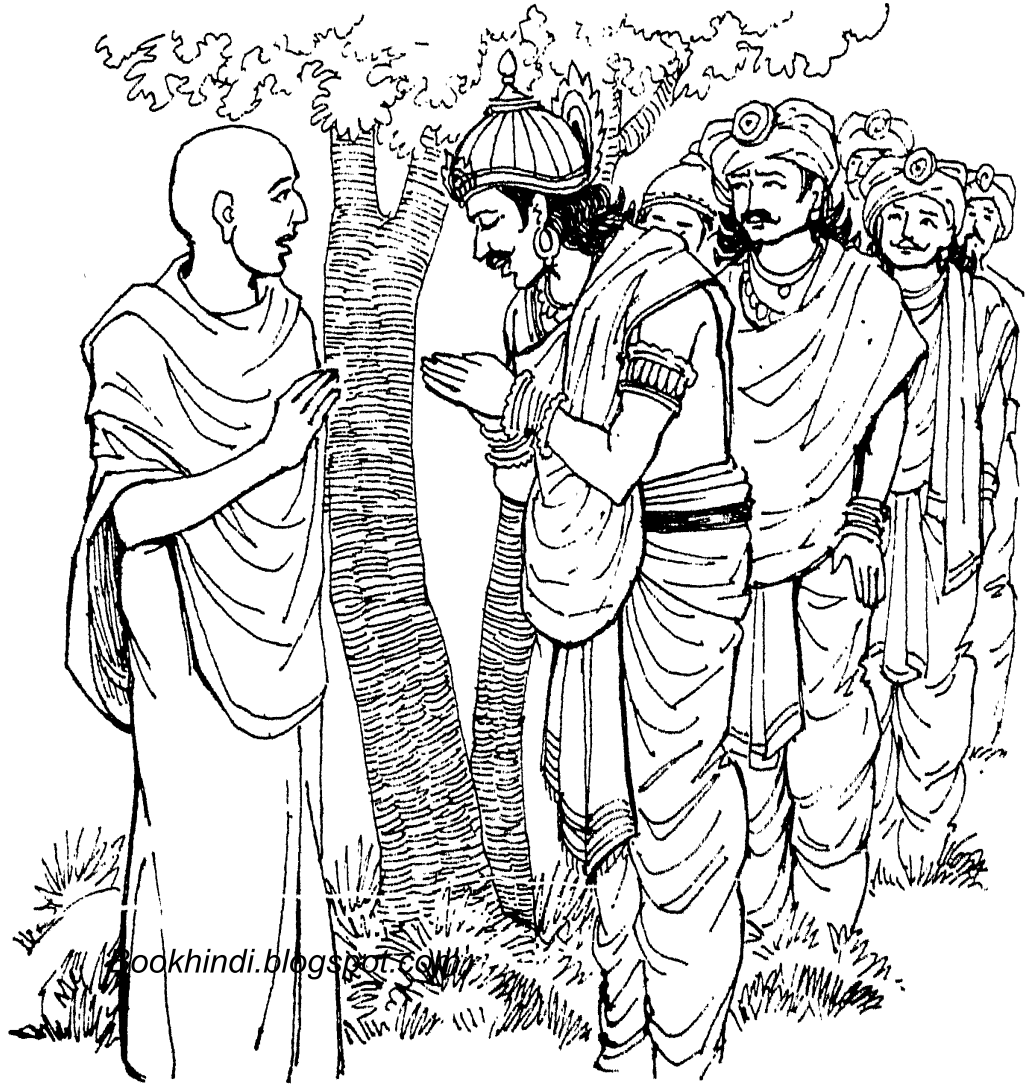
सम्राट अशोक ने मुस्कराते हुए कहा, "भिक्षुवर, मैं तुम्हारे विचारों को अब समझा। इनमें सार है। इनसे राक्षस को इंसान बनाया जा सकता है। धरती पर स्वर्ग लाया जा सकता है। मैं आज अपनी नीति में परिवर्तन करने की घोषणा करता हूँ। मनुष्यों के कल्याण के लिए मैं तलवार नहीं उठाऊँगा।"

"तभी सम्राट तुम्हारा नाम युग-युगों तक अमर होगा। संसार हमेशा तुम्हारी कीर्ति का गान करेगा। भगवान बुद्ध तुम्हारा कल्याण करें।" भिक्षु ने सम्राट अशोक को आशीर्वाद दिया।

सम्राट के हृदय में भिक्षु के प्रति दिनोंदिन आदर बढ़ने लगा। सम्राट स्वयं भिक्षु की ओर खिंच चले।

5

सम्राट अशोक को अब युद्ध से घृणा हो चली थी। उनकी नीति में महान परिवर्तन हो चुका था। इस परिवर्तन का एकमात्र कारण उनकी भिक्षु के प्रति बढ़ती श्रद्धा थी।

भिक्षु कोई साधारण मनुष्य नहीं था। वह बनारस के प्रसिद्ध धनिक मोगली का पुत्र था। उसका नाम उपगुप्त था। बचपन से ही संसार से विरक्त हो जाने पर उसने संन्यास ले लिया था। संन्यास लेने के बाद धर्म और दर्शन का गंभीर अध्ययन उसने किया। योगाभ्यास में वह उस समय का श्रेष्ठ व्यक्ति था। वह अपने ज्ञान से सारे उत्तर भारत में प्रसिद्ध हो गया था। उत्तर भारत में फैले बौद्ध-मठों का वह मुख्य आचार्य था। उस समय के सभी लोग 'आचार्य उपगुप्त' के नाम से उसे जानते थे।

एक दिन सम्राट अशोक से आचार्य उपगुप्त ने कहा, "सम्राट, ईश्वर ने मनुष्य और जीव दोनों बनाए हैं। दोनों ही उसकी लीला के रूप हैं। दोनों में से किसी एक की भी हिंसा करना उचित नहीं। धर्म के नाम पर लाखों पशुओं का वध करने से मनुष्य का कल्याण नहीं होता। यह जीव-हिंसा महापाप है। अहिंसा सच्चा धर्म है। गूँगे पशुओं को धर्म के नाम पर तलवार से मार डालना धर्म नहीं, अधर्म है। आप जीव-हिंसा बंद करने का प्रयत्न करें।"

आचार्य उपगुप्त की बातें सुनकर सम्राट अशोक ने जीव-हिंसा को तुरंत ही बंद करने की प्रतिज्ञा करते हुए कहा, "भिक्षुवर, मेरे रसोईघर में प्रतिदिन आठ हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने के लिए जो हजारों पशुओं की जीव-हिंसा की जाती है वह आज से बंद कर दी जाएगी। पर मैं जब

तक अपने स्वाद पर क़ाबू न पा लूँ तब तक केवल तीन ही जीव—दो मोर और एक मृग का वध प्रतिदिन चलता ही रहेगा। भविष्य में ये तीनों जीव भी नहीं मारे जाएँगे।[1] मुझे माँस खाने का चस्का मध्य प्रदेश में लगा, जब मैं उज्जैन का शासक था। मोर का माँस वहाँ के मनुष्यों को बहुत अच्छा लगता है। मैं धीरे-धीरे माँसाहार को छोड़ दूँगा।"

आचार्य उपगुप्त सम्राट की बातों से प्रभावित हुए। उन्होंने सम्राट को धर्म की महिमा बतलाते हुए कहा, "सम्राट, जीव-हिंसा को मिटाने के लिए तुमने जो प्रतिज्ञा की, भगवान बुद्ध उसमें तुम्हें सफलता दें। संसार के कल्याण के लिए ऐसे ही नैतिक गुणों और सदाचारों को अपनाना, धर्म के सच्चे सिद्धांत हैं।"

"तो, आचार्य, पाप से दूर रहना, अच्छे काम करना, दया, दान, सत्य और पवित्रता का पालन करना ही आपके मतानुसार धर्म की परिभाषा मानी जाए ?"[2] अशोक ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ सम्राट, धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़े, प्राणियों की हत्या और रक्तपात धर्म नहीं कहलाते। भगवान बुद्ध के अनुसार अहिंसा ही सत्य और परम धर्म है।"

"तो, फिर ऐसे उत्तम धर्म के लिए, मेरा जीवन आपके चरणों में समर्पित है आचार्य ! मैं ऐसे धर्म को उत्तम समझता हूँ, जिसमें मनुष्यों के विचार न दबें। जो मनुष्य की उन्नति में सहायक हो। आचार्य, मुझे ऐसे धर्म की दीक्षा दें।"

इसके तुरंत बाद ही आचार्य उपगुप्त ने सम्राट अशोक को बौद्धधर्म में दीक्षित करते हुए कहा, सम्राट, बोलिए—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

सम्राट ने आचार्य उपगुप्त के वाक्यों को दोहराया और वे उसी समय से बौद्धधर्म के अनुयायी बन गए।

---

1. अशोक का प्रथम शिलालेख।
2. अशोक का दिल्ली-टोपरा का दूसरा स्तम्भ लेख।

इसके बाद सम्राट अशोक ने जीवमात्र की सुख-सुविधा का हमेशा ध्यान रखा। जीवमात्र के कल्याण के लिए उन्होंने (पशु और मनुष्य दोनों के लिए) अस्पताल तक खुलवाए। जीवमात्र के कल्याण के लिए संसार में सबसे पहले अशोक ने ही अस्पताल खुलवाए थे।

❄ ❄ ❄

सम्राट अशोक का राजदरबार लगा। इस राजदरबार में सम्राट की अधीनता स्वीकार किए राजा, सम्राट के मित्र-राजाओं के दूत, साम्राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारी सभी सम्राट अशोक की नई नीति की बातें सुनने पधारे। सम्राट अशोक ने अपनी नई नीति के बारे में बताते हुए कहा, ''उपस्थित सभासदो व मेरे परम अतिथियो ! आप सभी ने सुना है कि मैं रणभेरियों के स्थान पर धर्मघोष, विहारयात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्राएँ, हिंसा के स्थान पर अहिंसा और शस्त्र-विजय के स्थान पर धर्म-विजय की नीति अपना चुका हूँ। आखिर क्यों ? तो सुनिए, मैंने अपने राजतिलक के दिन की गई घोषणा के अनुसार कलिंग राज्य को विजय किया। कलिंग देश से डेढ़ लाख मनुष्य बंदी बनाकर देश से बाहर ले जाए गए। एक लाख मनुष्य युद्ध में मारे

गए और इससे कई गुने आदमी महामारी आदि से मरे। कलिंग देश को जीत लेने के बाद मैंने अपने गुरु आचार्य उपगुप्त के उपदेशों और कृपा द्वारा धर्म का ज्ञान प्राप्त किया। धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के बाद मुझे अपने कार्यों पर पश्चात्ताप हुआ क्योंकि जिस देश को जीता जाता है, वहाँ लाखों मनुष्यों का वध होता है और लाखों को देश से बाहर निकाल दिया जाता है। मुझे यह देख बहुत दुःख हुआ। मैंने युद्ध कर जो लहू की नदियाँ बहाईं, उससे माता पृथ्वी के मुख पर कलंक ही लगा है। इंसानियत के नाम पर बट्टा लगने के सिवाय मुझे कुछ न मिला। पर अब मुझे ज्ञान हुआ है और मैं चाहता हूँ कि हर प्राणी के साथ अहिंसा, संयम, समानता, मृदुता और दया का व्यवहार किया जाए। इसी सिद्धांत के आधार पर मैंने आप सभी के राज्यों अर्थात अपने राज्य के 500 योजन दूर तक के राज्यों में जो विजय की, वह आज से धर्म की विजय है। इसके सिवाय जिन राज्यों में मेरे दूत नहीं पहुँच सके हैं, वहाँ के लोग मेरे उपदेशों को सुनकर ही

उस पर चलते हैं। मैं अब इस धर्म की विजय को मुख्य मानता हूँ। यह विजय आनंद देने वाली है। इसी आनंद से मैं जनता का कल्याण कर सकूँ। अंत में मैं अपने पुत्र और पौत्रों तथा आप सभी से यही निवेदन करता हूँ कि आप नए देशों को जीतने के चक्कर में पड़कर जनता पर अत्याचार न करें। नए देशों को जीतना अपना कर्त्तव्य न समझें। यदि आप दूसरे देशों को जीतना ही चाहें तो अहिंसा और प्रेम से जीतें। वहाँ क्षमा और दया से काम लें। तभी आपका जीवन सफल हो सकेगा।''[1]

सम्राट अशोक के भाषण के बाद सभी उपस्थित सभासदों ने जयजयकार किया। तभी आचार्य उपगुप्त ने कहा, ''आप सभी की ओर से मैं निवेदन करता हूँ कि आज से सम्राट अशोक, अपने नाम के आगे से 'सम्राट' की आडम्बर से भरी पदवी को छोड़कर 'प्रियदर्शी' (प्रिय है दर्शन जिनका) की उपाधि धारण करें। यह पदवी अत्यंत पवित्र और उच्च है, जो उनके ग्रहण करने योग्य है।''

यह कहकर आचार्य उपगुप्त अपने स्थान पर बैठ गये। उनकी बातों से सब सहमत दिखाई पड़े। तभी सम्राट अशोक ने अपने सिंहासन से उठकर कहा, ''आचार्य के दिए हुए प्रसाद को मैं स्वीकार करता हूँ। पर, मैं साथ ही निवेदन करता हूँ कि मेरी भारतभूमि देवताओं की जन्मभूमि है। इसमें प्राणियों के रूप में 33 करोड़ देवी-देवता रहते हैं। मैं इस भूमि को स्वर्ग के समान सुन्दर बनाना चाहता हूँ। मैं देवताओं का प्रिय बनने के लिए 'देवानांप्रिय' (देवताओं के प्रिय) की उपाधि धारण करना चाहता था। पर...''

तभी सम्राट अशोक की बात काटते हुए आचार्य उपगुप्त ने कहा, ''तो सम्राट चिंता किस बात की है ? 'प्रियदर्शी' की उपाधि से जनता आपको विभूषित करने जा रही है और आप स्वयं 'देवानांप्रिय' बन बैठे हैं। आप इन दोनों को ही धारण कीजिये।''

सम्राट अशोक ने आचार्य उपगुप्त की दी हुई उपाधि को सिर झुकाकर स्वीकार किया। उसके तुरंत बाद ही—'देवानांप्रिय प्रियदर्शी अशोक की जय' से आकाश गूँज उठा। और सम्राट अशोक के नाम के साथ ये दोनों उपाधियाँ

---

1. अशोक के शिलालेख चार व तेरह का सारांश।

ही उनके धर्मलेखों में लिखी मिलती हैं।

कुछ पल शांत रहने के बाद अशोक ने कहा, "जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथों में सौंप कर निश्चिंत हो जाता है और सोचता है कि यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी, ठीक इसी प्रकार मैं अपनी पुत्र के समान प्रजा को कुशल कर्मचारियों के हाथों में सौंपकर संतोष का अनुभव करता हूँ। पर अपने राज्य के सिवाय संसार के सभी देशों के मनुष्यों के विचारों को सुन्दर बनाने, कर्मचारियों को प्रजासेवी बनाने के लिए मैं बौद्धधर्म के शांति, सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का प्रचार करना जरूरी समझता हूँ। अतः इन सिद्धांतों की उन्नति के लिए मैं 84000 स्तूपों का निर्माण करवाऊँगा। भगवान बुद्ध के जीवन संबंधी स्थानों की आचार्य उपगुप्त के साथ यात्रा करूँगा। तभी मैं सच्चा धर्म पृथ्वी पर फैला सकूँगा। मेरी यह इच्छा है कि मेरी बातों को सारे संसार को बताया जाय। मेरे अनुभवों

को सभी जगह प्रकाशित किया जाय। मेरी आशाओं को सर्वत्र फैलाया जाय।"[1]

सभी ने प्रियदर्शी अशोक की बातों को एक स्वर से स्वीकार किया। तभी महामंत्री राधागुप्त उठकर खड़े हुए और बोले, "सम्राट, आपकी वाणी को अमर बनाने का प्रबंध मैं कर चुका हूँ। मैं पहाड़ों, गुफाओं, टीलों और स्तंभों पर आपकी वाणी अंकित करवाकर सारे संसार की जनता के लिए सुलभ किये देता हूँ।"

महामंत्री राधागुप्त की इस सुन्दर कल्पना पर सभी लोग मुग्ध हो गये। सभी ने महामंत्री की बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की। महामंत्री राधागुप्त के सद्-प्रयत्नों से अशोक की वाणी अमर बन गई। आज भी अशोक की वाणी भारतवर्ष की चारों दिशाओं में पत्थरों द्वारा संसार को सुनने को मिलती है।

---

1. अशोक का दिल्ली-टोपरा का चौथा स्तंभ-लेख।

6

सम्राट् अशोक अपने गुरु आचार्य उपगुप्त के साथ बौद्धधर्म के तीर्थों की यात्रा करने निकल पड़े। सबसे पहले वे लुम्बिनीवन नाम के स्थान पर पहुँचे। आजकल यह स्थान नेपाल देश में है। यहीं पर भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। सम्राट अशोक, जब यहाँ पधारे तो ग्रामवासियों ने उनका स्वागत किया। सम्राट अशोक ने इस स्थार की पूजा की। यहाँ एक पत्थर की दीवार बनवाकर एक स्तंभ खड़ा किया। बाद में सम्राट अशोक ने लुम्बिनी ग्राम में आने की खुशी में वहाँ के निवासियों पर लगे कर को समाप्त कर दिया।

लुम्बिनीवन की यात्रा कर सम्राट कपिलवस्तु पहुँचे। यहीं पर भगवान गौतम बुद्ध ने राजसिंहासन को छोड़कर संन्यास ग्रहण किया था। रोग, शोक, बुढ़ापा और मृत्यु पर विजय पाने के लिये घर छोड़ कर वन में चले गये थे। सम्राट अशोक इस स्थान का दर्शन कर हर्ष से गदगद हो उठे। उन्होंने इस स्थान की महत्ता को बनाये रखने के लिए यहाँ पर अनेक स्तंभ और स्तूपों की स्थापना की। इनमें से एक स्तंभ के सिरे पर अशोक ने अश्व की मूर्ति को स्थापित किया।

इसके बाद सम्राट अशोक निरंजना नदी पर बसे बुद्ध-गया तीर्थ पर पहुँचे। यहीं पर भगवान गौतम बुद्ध ने मानव-जाति के कल्याण की कामना के लिये कठोर तपस्या की थी। इसी स्थान पर पीपल के पेड़ के नीचे भगवान गौतम बुद्ध को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ था। सम्राट अशोक ने उस पीपल के पेड़ (बोधिवृक्ष) को देखा। उसे देखते ही वे श्रद्धा से भर उठे। उन्होंने उस पीपल के पेड़ (बोधिवृक्ष) के चारों ओर चबूतरे का निर्माण

कराकर वहाँ एक पत्थर पर भगवान बुद्ध की यशोगाथा खुदवा दी।

बुद्ध-गया के दर्शन कर सम्राट अशोक सारनाथ पहुँचे। सारनाथ नाम का स्थान आजकल वाराणसी से लगभग चार कोस दूर है। इसको 'ऋषिपत्तन' भी कहते हैं। आचार्य उपगुप्त ने यहाँ पहुँचकर कहा, "सम्राट, इस भूमि का बौद्ध धर्म में विशेष महत्त्व है। भगवान बुद्ध ने सबसे पहले यहीं पर अपने पाँच शिष्यों को धर्म का उपदेश दिया था। यहीं से बौद्धधर्म का चक्र सारे संसार में फैला था। सम्राट, भगवान बुद्ध का प्रथम उपदेश था सत्य वचन बोलो। सत्य पथ पर चलो। सत्य को खोजो। सत्य-संकल्प करो। सत्य से जीविका प्राप्त कर अपने जीवन को चलाओ। सत्य को याद रक्खो। सत्य को पाने के लिये समाधि लगाओ। संसार के माया और मोह में अपने जीवन को नष्ट मत करो। मन को पवित्र करने के लिए और मुक्ति पाने के लिये शरीर को मत तपाओ। केवल सत्य को अपनाओ और सत्य के रास्ते पर चलो।"

आचार्य उपगुप्त के मुख से सारनाथ की महत्ता का वर्णन सुन सम्राट अशोक को अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। सम्राट अशोक ने इस स्थान के महत्त्व को बनाये रखने के लिये यहाँ अनेक स्तूपों और अनेक स्तंभों का निर्माण कराया। इन स्तंभों और स्तूपों में उसने अनेक उपदेश लिखवाये। इन उपदेशों का सारांश है : "बौद्ध-धर्म को मानने वाले भिक्षु धर्म के संघ में फूट न डालें। सभी राजकर्मचारी फूट डालने वाले मनुष्यों को ऐसा करने से रोकें।" इसके अलावा अशोक ने सारनाथ में बौद्धधर्म के प्रचार के लिये अनेक विद्यालय भी खोले, जहाँ पर बौद्ध-भिक्षु छात्रों को सदाचार और अहिंसा को जीवन में अपनाने का पाठ पढ़ाया करते थे।

सम्राट अशोक के इन प्रयत्नों से सारनाथ भारतीय संस्कृति का प्रमुख केंद्र बन गया। आजकल भी बुद्ध-गया के बाद सारनाथ बौद्धों का सबसे बड़ा तीर्थ है। हर साल यहाँ सारे संसार के बौद्धों का सम्मेलन होता है। गणतंत्र भारत की सरकार ने सारनाथ की महत्ता को जीवित करने के लिये यहाँ के स्तंभ पर बनी चार सिंह मूर्तियों को सरकारी चिह्न बनाया है। ये मूर्तियाँ संसार की सबसे सुन्दर पशु-मूर्तियाँ हैं। संसार की कला का यह बेजोड़ नमूना है।

सारनाथ से अशोक श्रावस्ती पहुँचे। श्रावस्ती में भगवान गौतम बुद्ध

ने अपने जीवन का अधिकांश समय बिताया था। यहीं पर उन्होंने धर्म के सिद्धांतों की चर्चा की थी। यहीं से उनकी वाणी सारे संसार को आनन्द देने वाली बनी थी। भगवान बुद्ध के तीन प्रमुख शिष्यों—सारिपुत्र, मौद्गलायन और आनंद—ने अपने गुरु की वाणी को यहीं सुना था। सम्राट अशोक ने यहाँ के प्रसिद्ध बौद्धमठ 'जेतवन विहार' को देखा। अपने गुरु आचार्य उपगुप्त की सलाह से सम्राट ने इस विहार के चारों ओर अनेक स्तंभों की स्थापना की। इनमें से एक स्तंभ के सिरे पर अशोक ने बैल की मूर्ति बनवाई।

बौद्धधर्म के सभी मुख्य-मुख्य तीर्थस्थानों की यात्रा करने के बाद सम्राट अशोक कुशीनगर पहुँचे। कुशीनगर उत्तर प्रदेश राज्य के गोरखपुर जिले से 34 मील दूर स्थित है। यहाँ पहुँचते ही आचार्य उपगुप्त ने कहा, "सम्राट, यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान बुद्ध ने शरीर त्यागा था। शरीर त्यागते समय भगवान बुद्ध ने अपने शिष्य आनंद को अंतिम उपदेश दिया था कि आनंद मेरे बाद तुम्हारे गुरु मेरे उपदेश ही होंगे। तुम धर्म, संघ और बुद्ध में विश्वास रखना।" सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध के निर्वाणस्थल को देखा। सम्राट की इच्छा से वहाँ स्तूप बनवा दिया गया। साथ ही भगवान बुद्ध की मृत्यु की कहानी भी एक पत्थर पर खुदवा दी गई।
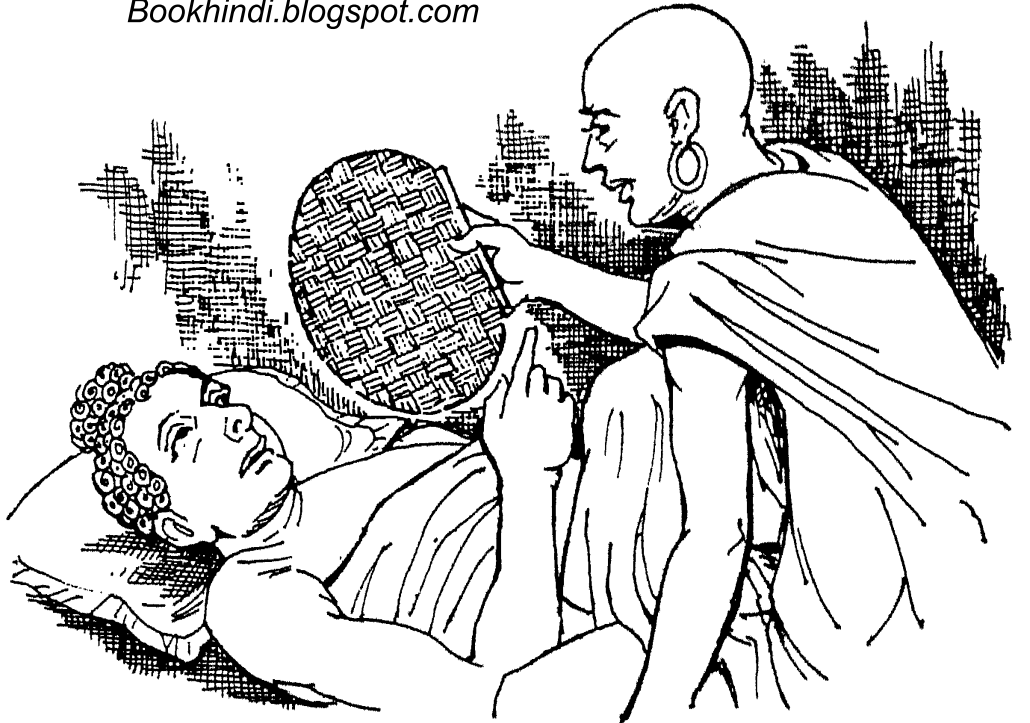
बौद्ध लोग कुशीनगर को आज भी महत्त्व की दृष्टि से देखते हैं। एशिया और यूरोप से दर्शन करने के लिए प्रतिवर्ष यहाँ हजारों यात्री आते हैं।

सम्राट अशोक की ये तीर्थयात्रायें इतिहास में 'धर्मयात्राओं' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सम्राट को इस प्रकार की 'धर्मयात्राएँ' करने का विशेष चाव था। एक बार सम्राट हिमालय के सुन्दर प्रदेश में धर्मयात्रा कर रहे थे। हिमालय की मनमोहक सुन्दरता को देखकर वे मुग्ध हो गये। यह स्थान उन्हें सत्य और शांति की उपासना करने वाले बौद्ध-भिक्षुओं के लिये बहुत सुन्दर लगा। उन्होंने तुरंत ही वहाँ पर अनेक मठों, स्तूपों और विहारों का निर्माण करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही उस स्थान पर एक सुन्दर नगर बसाया गया। इस नगर का नाम सम्राट अशोक ने अपनी पुत्री चारुमति के पति देवपाल के नाम पर 'देवपत्तन' रखा। आज भी यह नगर नेपाल देश में सम्राट अशोक की महत्ता का गान कर रहा है।

सम्राट अशोक ने हिमालय के आँचल में एक नगर और भी बसाया था। यह नगर केसर की क्यारियों की मनोहर छटा बिखराने वाले काश्मीर प्रदेश में था। इस नगर में सम्राट ने बौद्ध-भिक्षुओं के लिये पाँच सौ विहारों और मठों का निर्माण करवाया। इन मठों में अनेक भिक्षु रहा करते थे। यह स्थान बाद में श्रीनगर कहलाया। यही श्रीनगर वर्तमान जम्मू-काश्मीर की राजधानी है।

सम्राट अशोक बौद्ध-तीर्थों तथा अनेक स्थानों की यात्रा करने के बाद राजधानी वापिस आये। सम्राट अशोक को इन धर्मयात्राओं में अनेक कष्ट मालूम पड़े। उन्होंने महामंत्री राधागुप्त को आज्ञा देते हुए कहा, "तीर्थों की यात्रा कर मनुष्य का मन निर्मल हो जाता है। उसके हृदय में धर्म के प्रति अटूट विश्वास पैदा होता है। तीर्थों की यात्रा करने से मनुष्य का ज्ञान भी बढ़ता है। इसलिये मेरी इच्छा है कि तीर्थों के मार्गों में यात्रियों के आराम के लिये धर्मशालाएँ बनवाई जाएँ। दोपहर की धूप से बचने के लिए रास्तों में दोनों ओर पेड़ लगये जाएँ। इन पेड़ों की छाया में चलकर यात्रियों को सुख मिलेगा। यात्रियों को रास्ते भर मीठा जल मिले, इसके लिये कुएँ खुदवाये जाएँ। उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिये तीर्थ-मार्गों में अस्पताल भी खोले जाएँ। इसी से मनुष्यों का कल्याण भी होगा। मनुष्यों के कल्याण से ही मुझे सुख मिलेगा।"

महामंत्री राधागुप्त ने सम्राट की आज्ञा को तुरंत ही पूरा किया। हिंदू, जैन और बौद्धों के पवित्र तीर्थस्थानों तक के रास्तों में सड़कें बनवाई गई। वृक्ष लगवाये गये। कुएँ खुदवाये गये। यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशालाएँ और स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए अस्पताल खोले गये। इससे यात्रा करना सरल हो गया।

तीर्थ-यात्रा को समाप्त करने के बाद सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य के प्रसिद्ध स्थानों पर सैकड़ों स्तंभों और स्तूपों की स्थापना की।

इन में से एक स्तंभ सारनाथ में था। यह स्तंभ चिकने हरे पत्थर का बना था। इस स्तंभ की चमक शीशे के समान थी। इसमें भगवान बुद्ध की परछाई झलका करती थी। यह स्तंभ लाट भैरों के नाम से प्रसिद्ध था। पर सन् 1805 के दंगे में तोड़ दिया गया।

ये सभी स्तभ अशोक के समय की कला के सुन्दर नमूने हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के तो ये जीते-जागते उदाहरण हैं। इनकी ऊँचाई 40 फीट से लेकर 50 फीट तक है। लगभग 9 से 10 फीट तक ये जमीन में गड़े हुए हैं। सभी स्तंभ पूरी तरह से पत्थर के बने हुए हैं। इन स्तंभों की सुन्दर चमकदार पालिश उस युग की शिल्पकला की महत्ता को बतलाती है। इस चमकदार पालिश को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि ये स्तंभ अभी हाल ही के बने हों। आज बीसवीं सदी में भी ऐसी चमकदार पालिश और ऐसे बड़े-बड़े स्तंभों का निर्माण नहीं हो सकता। आज के वैज्ञानिक इन स्तंभों को देखकर हैरान रह जाते हैं। बड़े-बड़े इंजीनियरों को भी दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। अंत में सबको यही मानना पड़ता है कि जिन कलाकारों ने इन स्तंभों को बनाया और खड़ा किया वे मनुष्य नहीं देव थे।

इन स्तंभों के सिरों पर हाथी, घोड़ा, सिंह और बैल की मूर्तियाँ बनी हैं। इन मूर्तियों का भगवान बुद्ध के जीवन से विशेष संबंध है। ये मूर्तियाँ भगवान बुद्ध के जीवन की चार घटनाओं को बतलाती हैं। भगवान बुद्ध के जन्म से पहले उनकी माता मायादेवी ने एक सपना देखा था। इस सपने में भगवान बुद्ध ने अपनी माँ के गर्भ में सफेद हाथी के रूप में प्रवेश किया था। सो हाथी। भगवान बुद्ध ने जब संसार को छोड़ कर संन्यास लिया तब उनके रथ में घोड़ा जुता हुआ था। इस रथ से ही वे अपने राज्य को

छोड़ वनों में पहुँचे थे। उसी याद को दिलाने वाली यह घोड़े की मूर्ति है। भगवान बुद्ध का जन्म शाक्य कुल में हुआ था। अपने महान गुणों के कारण वे शाक्यसिंह कहलाये। इसी कारण से सिंह की चारों मूर्तियाँ उनके नाम की प्रतीक हैं। ये चारों मूर्तियाँ चारों दिशाओं में बनी हुई हैं। इसका अर्थ है कि शाक्यसिंह भगवान बुद्ध चारों दिशाओं में अपने उपदेश दे रहे हैं। भगवान बुद्ध के पिता का नाम राजा शुद्धोदन था। उनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। कपिलवस्तु के शाक्यों का ध्वज-चिह्न बैल था। अतः यह बैल की मूर्ति भगवान बुद्ध के शाक्य कुल की प्रतीक है।

अशोक के जो स्तंभ आज पाये जाते हैं, उनमें से प्रायः हरएक का वजन 1350 मन के लगभग है। ये सभी स्तंभ चुनार के पत्थर के हैं और केवल दो भागों में बने हैं। समूचा स्तंभ एक पत्थर का है; उस पर बनी मूर्ति आदि दूसरे पत्थर की हैं। उस समय न तो विज्ञान की इतनी उन्नति ही थी और न इतने भारी सामान को ढोने के लिए सुविधाएँ। इसी कारण सभी वैज्ञानिक हैरान हैं कि इनका निर्माण और स्थापना करने में अशोक ने किस भाँति सफलता पायी।

एक बार दिल्ली का बादशाह फ़ीरोज़शाह अंबाला ज़िले के टोपरा गाँव के एक अशोक स्तंभ पर मोहित हो गया। उसने इस स्तंभ को टोपरा से उखाड़ कर दिल्ली ले जाना चाहा। इस काम के लिये उसने तुरंत ही अपने सैनिकों को बुला भेजा। स्तंभ के चारों ओर रूई बिछाई गई। ज़मीन से खोदने के बाद धीरे-धीरे उसे मुलायम रूई पर लिटा दिया गया। इसके बाद सारे स्तंभ को कच्ची खाल और घास से लपेट दिया गया। तब 42 पहियों की एक गाड़ी बनवाई गई। इस गाड़ी के हर पहिये पर रस्सियाँ बाँधी गई। हर पहिये को खींचने के लिए 200 आदमी तैनात हुए।

इस प्रकार (200 x 42) अर्थात 8400 मनुष्य उस गाड़ी को खींचकर यमुना के किनारे तक लाये। वहाँ पर बड़ी-बड़ी नावों की सहायता से यह स्तंभ देहली के फ़ीरोज़शाह कोटला में स्थापित हुआ। फ़ीरोज़शाह को मैदान में ही स्तंभ ले जाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर, सम्राट अशोक ने ऐसे अनेक स्तंभों का निर्माण करा कर भारत जैसे विशाल देश में चारों ओर लगवाये। अतः उस युग के कला-कौशल की उन्नति सहज ही ज्ञात हो जाती है।

सम्राट अशोक ने अपने जीवन में अनेक बौद्ध विहार व स्तूप भी बनवाये। इन विहारों का निर्माण भिक्षुओं के रहने के लिए किया गया। भिक्षु लोग इन विहारों में रहकर धर्म का ज्ञान प्राप्त करते थे। ये विहार सारे भारतवर्ष में फैले हुए थे। इन विहारों में ही विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाया करती थीं। ऐसे विहारों को शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भूमिदान के रूप में राज्य से सहायता मिलती थी। इस भूमि पर कोई भी कर नहीं था। इन्हीं विहारों में से एक विहार नालंदा-विहार भी था। यही विहार आगे चलकर भारत का प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय कहलाया। इसी प्रकार स्तूपों में साँची, भरहुत और पिपरीहया के तीन स्तूप ही देखने को मिलते हैं। शेष सब समाप्त हो गये मालूम पड़ते हैं।

7

अशोक ने अपनी बड़ी रानी आसंधीमित्रा की मृत्यु के बाद दो विवाह और किये। उसकी इन दोनों नई रानियों के नाम पद्मावती और तिष्यरक्षिता थे। तिष्यरक्षिता महारानी थी। उसके कोई संतान नहीं थी। पद्मावती के एक पुत्र था। वह बहुत सुन्दर था। उसकी आँखें हिमालय पर्वत पर पाये जाने वाले 'कुणाल' पक्षी के समान सुन्दर थीं। इस कारण उसे सब कुणाल कहते थे। कुणाल स्वभाव से ही हँसमुख और भोला था। उसे वीणा बजाने का चाव था। वह वीणा पर गाया भी करता था। उसके गाने को सुनकर

सभी लोग झूम उठते थे।

एक दिन कुणाल अपने महल में बैठा वीणा बजा रहा था। उसकी वीणा की मधुर झंकार और गले की सुरीली आवाज़ से सारा वायुमंडल गूँज रहा था। इसी आवाज़ को सुन महारानी तिष्यरक्षिता भी कुणाल के पास पहुँची। कुणाल ने महारानी तिष्यरक्षिता को उठकर प्रणाम किया।

कुछ देर बाद तिष्यरक्षिता ने कहा, "कुणाल, कितनी मीठी है तुम्हारी आवाज़ ! मालूम पड़ता है कि संगीत की देवी सरस्वती ही तुम्हारे हृदय में बैठकर गाती है।"

कुणाल ने हँसकर कहा, "माताजी, जैसी आपकी मीठी आवाज़ है वैसी आपके बेटे की भी। मेरे हृदय में संगीत की देवी सरस्वती नहीं, तुम मेरी माँ खुद अपनी सुरीली आवाज में गाती हो।"

"पर कुणाल, तुम तो मुझसे कहीं अधिक सुन्दर हो। तुम्हारी ये बड़ी-बड़ी आँखें तो तुम्हारी सुन्दरता में और भी चार चाँद लगाती हैं।" महारानी तिष्यरक्षिता ने सहमते हुए कहा।

"माताजी, तुम तो मेरी आँखों पर न जाने क्यों हर वक्त लट्टू हुई रहती हो। तुमने ही इन आँखों के कारण मेरा नाम कुणाल रख छोड़ा है। मेरा असली नाम धर्मविवर्धन तो कोई लेता ही नहीं। सब कुणाल ! कुणाल !! कहकर पुकारते हैं।" कुणाल ने भोले स्वभाव में कहा।

"कुणाल, तुम्हारी सुन्दरता को तो मैं अपने मन में बसाना चाहती हूँ।" तिष्यरक्षिता ने कुछ साहस कर कहा।

"माताजी, हर माँ अपने सुन्दर पुत्र को देखकर प्रसन्न होती है। हर माँ के हृदय में उसके पुत्र की सूरत नाचती रहती है। तब फिर माँ तुम्हें ऐसा करने से कौन रोक सकता है।" कुणाल ने गंभीर होकर कहा।

महारानी तिष्यरक्षिता कुणाल की बातों को सुनकर कुछ देर तक मौन रहीं। अंत में साहस कर बोलीं, "कुणाल, तुम समझे नहीं। मैं तुम्हारे चरणों में अपना जीवन न्योछावर करना चाहती हूँ। तुमको अपनाना चाहती हूँ। तुमको अपना प्रेम देना चाहती हूँ और तुमसे प्रेम की भीख माँगती हूँ। कुणाल, आशा करती हूँ तुम मुझे ठुकराओगे नहीं, प्यार करोगे। ठीक वैसे जैसे मोर मोरनी से करता है।" और कहते-कहते महारानी तिष्यरक्षिता भावविभोर हो गईं।

यह सब बातें सुनकर कुणाल हक्का-बक्का रह गया। वह महारानी तिष्यरक्षिता की ओर आश्चर्यचकित होकर देखता रहा। अंत में साहस बटोरकर बोला, "माताजी, मालूम होता है कि आज आप अस्वस्थ हैं। मैं तो आपका बेटा हूँ और बेटा ही रहूँगा। मेरे बारे में आप कुछ न सोचें। मैं, कुणाल आपका प्रिय पुत्र हूँ। आप शांति से बैठें। मैं चला।"

कुणाल के चले जाने के बाद महारानी तिष्यरक्षिता को बहुत क्रोध आया। वे पैर पटककर बोलीं, "अच्छा, सुंदरता का इतना गुमान ! देखती हूँ यह गुमान कब तक चलता है। मैं मगध की महारानी तिष्यरक्षिता इस गुमान को मिट्टी में मिलाकर ही चैन की साँस लूँगी। दुनिया मुझ पर हँसेगी तो हँस ले।"

इसके बाद महारानी तिष्यरक्षिता कुणाल से अपने अपमान का बदला लेने की योजनाएँ बनाने लगीं।

❄ ❄ ❄

तक्षशिला में फिर विद्रोह फूट पड़ा। विद्रोह को दबाने के लिए कुणाल तक्षशिला भेजा गया। उसने विद्रोह पर काबू पाया और शांति स्थापित की। सम्राट अशोक ने उसकी कार्यकुशलता को देखकर उसे वहाँ का शासक बना दिया।

एक दिन पाटलिपुत्र से दूत समाचार लाया : राजकुमार कुणाल की आँखें निकाल ली जाएँ। आँखें डिबिया में बंद करके पाटलिपुत्र भेजी जाएँ और कुणाल को तुरंत ही तक्षशिला से निकाल दिया जाए।

यह समाचार तक्षशिला के सभी राजकर्मचारियों ने सुना। सब राजकुमार कुणाल के पास जा पहुँचे। राजकुमार कुणाल ने उन्हें देखकर कहा, "सम्राट अशोक ने किसी अपराध में मेरे नेत्र निकलवाने की आज्ञा दी है। वे सम्राट होने के साथ-साथ मेरे पिता भी हैं। अतः उनकी आज्ञा टाली नहीं जा सकती। यह आज्ञा सत्य है क्योंकि इस पर सरकारी मुहर लगी हुई है।"

"पर राजकुमार, सम्राट अशोक तो अब पक्षियों की भी हिंसा नहीं करते। वे तुम्हारे नेत्र निकालने की आज्ञा दे ही कैसे सकते हैं ? मुझे यह आज्ञा छल से भरी हुई लगती है। आप इसकी जाँच हो जाने दें।" एक राजकर्मचारी ने कहा।

"इतनी गम्भीर बात भला झूठ कैसे हो सकती है ? मैं इस राजाज्ञा को सत्य समझता हूँ। आप जल्दी से मेरी आँखें निकलवाने का प्रबंध करें।" राजकुमार कुणाल ने उत्तर दिया।

सभी राजकर्मचारी कुणाल को समझाते रहे। कुणाल ने किसी की न सुनी। वह अपनी बात पर डटा रहा। राजाज्ञा का पालन करने के लिए उसे प्राणों की परवाह न थी। अंत में दो जल्लादों को बुलाकर उसने अपने नेत्र निकलवा दिए। नेत्रों के निकल जाने के बाद कुणाल अंधा हो गया। उसने स्वयं ही तक्षशिला का राजपाट त्यागकर वनों की राह पकड़ी।

8

राजदरबार लगा हुआ था। सभी सभासद, मंत्री और अनेक देशों के राजदूत उसमें पधारे। सम्राट अशोक ने सबका स्वागत करते हुए कहा, ''उपस्थित सभासदो ! आप सबके प्रताप से आज देश की चहुँमुखी उन्नति हो रही है। देश में सब जगह अमन, सुख-चैन और खुशहाली का साम्राज्य छाया हुआ है। इस सबका एकमात्र कारण है—युद्धों की आग में देश का न झोंके जाना। युद्धों से मानव-जाति का विनाश होता है, कल्याण नहीं। युद्ध देश का निर्माण नहीं कर सकते। राष्ट्र को यदि उन्नति करनी है तो उसे युद्धों से दूर रहना होगा।''

सम्राट अशोक अपने भाषण को समाप्त कर सिंहासन पर बैठे। इतने में ही महामंत्री राधागुप्त ने कहा, ''सम्राट ! बंगाल राज्य के पुण्यवर्धन नगर के कुछ नागरिक आपसे मिलना चाहते हैं।''

सम्राट अशोक ने कहा, ''महामंत्री, पुण्यवर्धन नगर के नागरिकों को बुलाया जावे। मैं उनसे वहाँ की स्थिति की पूछताछ करना चाहता हूँ।''

सम्राट से आज्ञा मिलते ही पुण्यवर्धन नगर के सभी नागरिक राजदरबार में आ पहुँचे। उन सभी की दशा बुरी दिखलायी पड़ रही थी। सबने राजदरबार में पहुंचते ही सम्राट को सिर झुकाकर अभिवादन किया। तब उनके नेता ने कहा, ''सम्राट, हम आपकी प्रजा हैं। हम जैन धर्म को मानते हैं। यह बात आपके राज्य में रहने वाले बौद्ध भिक्षुओं को बुरी लगती है। वे बल से हमें बौद्ध बनाना चाहते हैं। पुण्यवर्धन में इसी कारण उन्होंने लूट-मार मचा कर घरों में आग लगवा दी। वहाँ के शासक ने भी उन्हीं बौद्ध-भिक्षुओं का साथ दिया। बाराबर की गुफाओं से आए

हमारे मुनि वीताशोक का सिर भी वहाँ के सैनिकों ने इसी कारण से काट डाला। हमारे जैन मुनि वीताशोक ने अपने जीवन काल में कभी भी किसी को कष्ट नहीं दिया। सम्राट, यह सब हमने पत्थर के समान कठोर हृदय होकर सहा। पर पता नहीं, अब पुण्यवर्धन नगर का शासक हमारे खून का प्यासा क्यों बना है ? हम बेकसूर हैं ! आप हमारे प्राणों की रक्षा करें।''

वीताशोक का नाम सुनकर सम्राट अशोक का माथा ठनका। उनके मन में संदेह पैदा हो गया। वे बोले, ''नागरिक ! वीताशोक मेरा भाई है। वह बाराबर पर्वत की गुफाओं में रहता है। वह जैन धर्म को मानने वाला है। वह मारा गया ?''

''हाँ, सम्राट, दुष्ट सैनिकों ने जैनमुनि वीताशोक का सिर काट डाला। वे अब इस संसार में नहीं रहे। इस बात का सही प्रमाण उनकी यह अँगूठी है।'' उस नेता ने बहुत अधिक दुःखित होकर कहा, और एक अँगूठी सम्राट अशोक की ओर बढ़ा दी।

सम्राट अशोक ने अँगूठी को पहिचान लिया। उस पर उनके सगे भाई 'वीताशोक' का नाम भी लिखा हुआ था। वे मूर्च्छित होकर सिंहासन

पर गिर पड़े। सारे राजदरबार में खलबली मच गई। पर कुछ क्षणों बाद ही सम्राट ने बड़बड़ाना शुरू किया, ''मेरा भाई वीताशोक मारा गया। धर्म के नाम पर पशुओं की बलि मैंने बंद की। अब मनुष्यों की बलि होने लगी। मैंने धर्म के प्रचार के लिए तलवार छोड़ दी। सभी धर्मों के अच्छे गुणों का प्रजा में प्रचार किया। पर आज धर्म को मेरी प्रजा ने भेदों की दीवार बना लिया। हाय ! मैं अपनी माता सुभद्रांगी को कैसे सुनाऊँ यह दुःख भरा समाचार।'' कहते-कहते सम्राट अशोक फिर मूर्च्छित हो गए। किंतु कुछ देर बाद वे चिल्ला उठे, ''महामंत्री, मैं सभी धर्मों की समान वृद्धि चाहता हूँ। सभी धर्मों की वृद्धि की जड़ वाणी का संयम मानता हूँ। वाणी के संयम से मेरा मतलब सभी धर्मों का आदर करना है। हर धर्म को मानने वाले को चाहिए कि वह दूसरे धर्म की निंदा न करे। ऐसा करने से सभी धर्मों की उन्नति होती है। धर्मों की निंदा करने से मनुष्य अपने धर्म को गहरी हानि पहुँचाता है। इसी से मेरा मत है कि मेरी प्रजा के सब लोग एक-दूसरे के धर्म का आदर करें। इससे प्रजा के सभी मनुष्यों को एक-दूसरे के धर्म के बारे में ज्ञान भी प्राप्त होगा।

धर्म के नाम पर मैं पूजा या दान करना जरूरी नहीं मानता। मेरे विचार से तो धर्मों की उन्नति के लिए दूसरे धर्मों की श्रद्धा करना दान और पूजा से बढ़कर है। मेरे ये विचार जनता समझ नहीं सकी। इसी से पुण्यवर्धन नगर में शांति और अहिंसा के अवतार भगवान बुद्ध की मूर्ति तोड़ी गई। मेरे भाई वीताशोक को मौत के घाट उतारा गया। पर, आज मैं फिर घोषणा करता हूँ—सब धर्म अच्छे हैं। सब धर्म मेरी दृष्टि में समान हैं। सबकी मैं उन्नति चाहता हूँ। मेरी प्रजा के लोग एक-दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसका आदर करें। मेरी प्रजा धर्म के नाम पर खून न बहाए।"[1]

सम्राट अशोक की इस घोषणा के बाद महामंत्री राधागुप्त ने कहा, "सम्राट, मैं आपकी इस घोषणा को पत्थर पर खुदवा दूँगा। प्रजा को इससे अवश्य ही शिक्षा मिलेगी।"

इसके उत्तर में अशोक ने कहा, "महामंत्री, मैं अपने कार्यों से जनता को सुख पहुँचाना चाहता हूँ। इस कार्य में मैं प्राणों की बलि देने को तैयार हूँ। मेरी इस घोषणा से यदि प्रजा को आनंद मिलेगा तो मुझे प्रसन्नता होगी।"

1. अशोक के बारहवें शिलालेख का सारांश।

इतना कहकर सम्राट अशोक सिंहासन पर बैठे। तभी कुछ क्षण बाद उनके एक मंत्री यश ने कहा, "सम्राट, उड़ीसा राज्य में बसने वाली जंगली जातियों का विद्रोह शांत हो गया है। मगध की विशाल सेना के आने की अफवाह सुनते ही सारे सीमान्तवासी डर गए हैं।"

जंगली जातियों के विद्रोह का अंत होने की सूचना सुनकर सम्राट अशोक ने घोषणा की, "मैंने जिन सीमान्त जातियों को नहीं जीता है, वे मुझ से डरें नहीं। मुझ पर विश्वास करें। वे मुझ से सुख ही प्राप्त करें। दुःख न पावें। मैं जहाँ तक हो सकेगा उनको सदा क्षमा ही करता रहूँगा। वे इस लोक और परलोक को सुधारने के लिए धर्म का आचरण करें। मेरी यह इच्छा है कि मेरे कर्मचारी सीमान्त जातियों को धर्म मार्ग पर चलाने के लिए सदा प्रयत्न करते रहें। मेरी यह घोषणा उस राज्य में पत्थरों पर खुदवा दी जावे, जिससे पत्थर-हृदय भी पढ़कर हिल उठें।"[2] और सम्राट की यह घोषणा आज भी उड़ीसा राज्य में धौली और जौगढ़ नामक स्थानों में पहाड़ों पर अंकित है।

इस घोषणा के तुरंत बाद ही तक्षशिला के एक दूत ने राजदरबार में प्रवेश किया। उसने सम्राट का अभिवादन करने के बाद एक सोने की डिबिया भेंट की। सम्राट ने डिबिया की मुहर तोड़कर उसे खोला। डिबिया में हीरे के समान सुंदर दो आँखें और एक पत्र रखा हुआ था। आँखों को देखकर सम्राट ने कहा, "कितनी सुंदर हैं ये आँखें ! ठीक मेरे पुत्र कुणाल जैसी ! मालूम होता है ये 'कुणाल' पक्षी की आँखें हैं। इन आँखों को मैं अपनी बड़ी रानी तिष्यरक्षिता को भेंट कर दूँगा। तक्षशिला के शासक ने भी क्या सुंदर उपहार भेजा है।" और कहते-कहते सम्राट अशोक पत्र को पढ़ने लगे।

पत्र पढ़ते ही उनके होश उड़ गए। पर कुछ क्षण बाद ही उनकी आँखें लाल हो उठीं। माथा तन गया। भौंहें टेढ़ी हो गयीं और नथुने फूल उठे। उन्होंने तुरंत इस षड्यंत्र की खोज की। खोज करते ही उनके मुख पर क्रोध की झलक दिखलायी पड़ी। वे चिल्ला उठे, "मेरे कर्मचारियों ने मुझे धोखा दिया है। महारानी नीच, निर्लज्जा और चरित्रभ्रष्टा है। उस पापिनी ने पाप किया है। पाप में छल से कुणाल की आँखें निकलवाकर उसे भिखारी बना

---

2. धौली और जौगढ़ का द्वितीय अतिरिक्त शिलालेख।
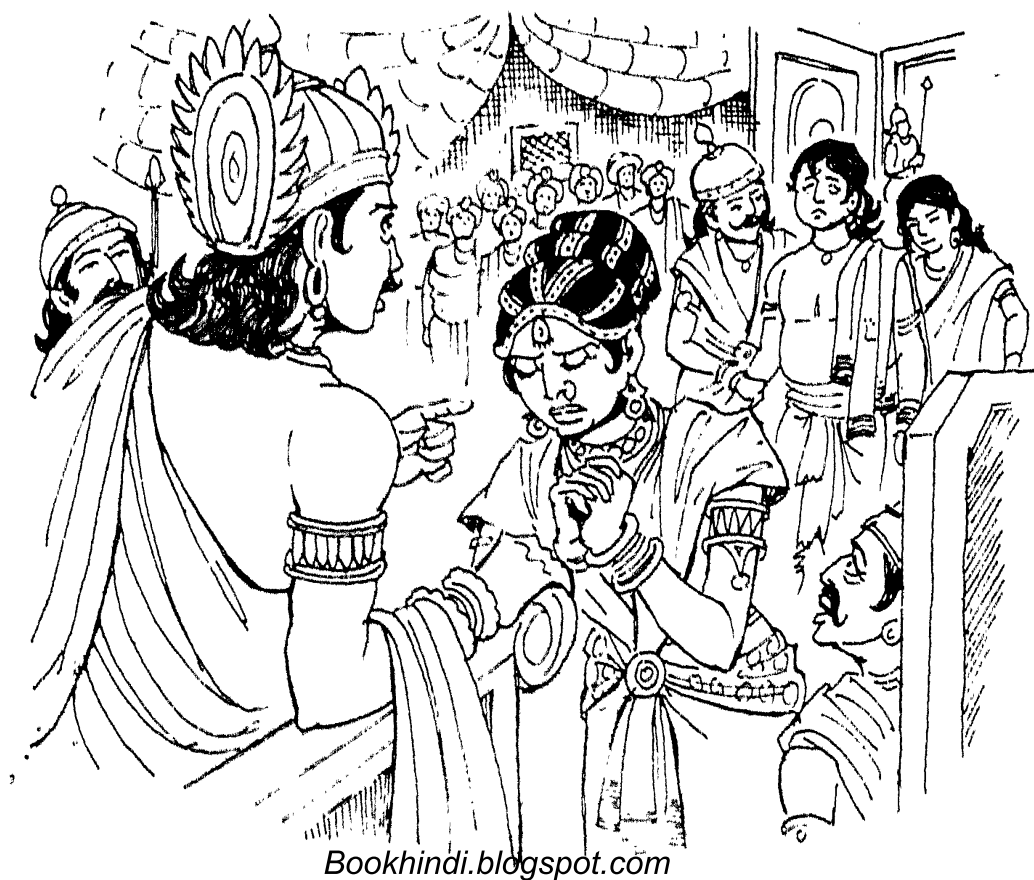
दिया है। आज मैं सभी पापियों को छाँट-छाँट कर दण्ड दूँगा। सब मेरा क्रोध भूल चुके हैं। आज वे मेरे क्रोध को देखें। महारानी तिष्यरक्षिता को बुलाया जाए !"

सम्राट की आज्ञा पाते ही तिष्यरक्षिता राजदरबार में उपस्थिति हुई।

तिष्यरक्षिता सम्राट अशोक को क्रोधित जान सहम गई। सम्राट अशोक के नेत्रों को अंगारे जैसा लाल हुआ देखकर सिर झुकाकर खड़ी हो गई। राजसभा के सभी सभासद एकटक होकर सम्राट और तिष्यरक्षिता के हाव-भावों को देखने लगे। सम्राट ने कहा, "तिष्यरक्षिता, तुम पापिनी हो। तुमने अपने पुत्र के समान युवराज कुणाल से पापकर्म करना चाहा था। उसमें सफलता न मिलने पर तुमने उस की आँखें निकलवा डालीं। तुम अपराधिनी हो। तुमने राजकीय मुहर की चोरी की है। तुमको मैं प्राणदण्ड की आज्ञा देता हूँ।"

प्राणदण्ड की कठोर आज्ञा को सुनकर सभासद काँप उठे। इस आज्ञा

को सुन तिष्यरक्षिता ने दुःखित स्वर में कहा, "सम्राट, मुझे दण्ड मिले। मैंने पाप किया है। मैं अपराधिनी हूँ। मैंने मौर्यवंश के कुलदीप युवराज कुणाल के जीवन से खेल किया है।" और अधिक वह कह न सकी। कहती भी कैसे ? अपराधिनी तो थी ही। पाप तो सिर पर चढ़कर बोलता है। सम्राट अशोक का बुरा हाल था। वे तिष्यरक्षिता को सबसे अधिक चाहते थे। उसे ही आज वे प्राणदण्ड देकर खो चुके थे। करते भी क्या ? न्याय के सामने अपना-पराया वे देख ही कैसे सकते थे।

इसी बीच द्वारपाल के कंधे पर हाथ रखे अंधे कुणाल ने राजदरबार में प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे उनकी पत्नी भी आ रही थीं। उनको देखते ही सारी राजसभा में हलचल मच गई। सम्राट अशोक सहित सभी उपस्थित सभासद कुणाल तथा उनकी पत्नी को आँखें फाड़कर देखने लगे। उन दोनों का बुरा हाल था। दोनों के वस्त्र फट चुके थे। भूख और थकान के कारण दोनों के शरीर पर झुर्रियाँ दिखलाई पड़ रही थीं। कुणाल द्वारपाल का सहारा लेकर सम्राट अशोक के सिंहासन के पास जा खड़े हुए। उन्हें देखकर सम्राट अशोक ने कहा, "कौन ? कुणाल तुम ? इस वेश में ? इतने दिन से कहाँ रहे ?"

कुणाल ने उत्तर दिया, "सम्राट, हाँ मैं आपका पुत्र युवराज कुणाल हूँ। आपकी आज्ञा से ही मेरी दोनों आँखें निकाल ली गई हैं। मैं आप ही की आज्ञा से वनों में घूमता रहा हूँ। आज न जाने कौन-सा आकर्षण मुझे आप तक खींच लाया। मैं भारत के महान सम्राट अशोक को अपनी वीणा का संगीत सुनाने की इच्छा से आया हूँ।"

सम्राट ने कुणाल की दीन दशा को देखा। उनकी दुःख और कष्टों से भरी कहानी को सुनकर कहा, "कुणाल ! मेरे पुत्र ! मैंने सब बातों का पता लगा लिया है। इस षड्यन्त्र के सभी पापियों को कठोर दण्ड दिया जाएगा। तेरी माँ, जो इस पाप और नीचकर्म का मुख्य आधार है, उसे प्राणदण्ड मिल चुका है। तू पिता को वीणा का मधुर राग सुनाना चाहता है, तो सुना। चल तेरे सुंदर संगीत से ही मैं अपने मन को शांति दूँगा।"

कुणाल ने आज्ञा पाते ही वीणा पर मधुर संगीत का राग छेड़ना शुरू किया। कुछ ही क्षणों में सारी राजसभा उसके मधुर संगीत को सुन झूम

उठी। स्वयं सम्राट अशोक भी बेसुध हो गए। उनको भी संगीत से सच्चे आनंद का अनुभव हुआ। संगीत के खत्म होने पर कुणाल ने सम्राट अशोक से कहा, "सम्राट, सच्चा आनंद मोह त्यागने पर मिलता है। आप मोह त्यागें, आनंद आपको मिल जाएगा। मुझे ही देखिए, मैं अपने नेत्रों के मोह को छोड़ चुका हूँ। इससे मुझे लाभ ही हुआ है। मेरा मन अब सबको समान समझता है। आज मेरे बाहरी नेत्र न रहे तो क्या, हृदय में ज्ञान का प्रकाश तो फैल चुका है। इसी कारण से मैं अपनी वीणा के तारों के बल पर आप सबको आनंद देने में समर्थ हूँ। आप भी सम्राट, मेरा मोह छोड़ माता को प्राणदण्ड न दें। अपराधी के अपराधों से घृणा करें, अपराधी से नहीं। अपराधी के हृदय को क्षमा से जीतने की कोशिश करें। उसके हृदय को भय और दण्ड के बल से बदलने का मोह छोड़ दें। तभी आपको भी आनंद मिलेगा।" *Bookhindi.blogspot.com*

"पर कुणाल, यह तो राजकाज को न्यायपूर्ण चलाने का प्रश्न है। यदि ऐसे पापियों को दण्ड न दिया जाए तो फिर राजकाज कैसे चले ? राजकाज में रोड़े अटकाने वाले को दण्ड देना आवश्यक है।" सम्राट अशोक ने कुणाल को समझाते हुए कहा।

कुणाल कुछ मुस्कराकर बोला, "सम्राट, बल-प्रयोग की नीति को आप छोड़ चुके हैं। उस नीति को फिर अपनाना मोह नहीं तो और क्या है ? मैं अंधा हो चुका हूँ। मेरे नेत्र अब वापस नहीं लौट सकते। इसीलिए आप माता तिष्यरक्षिता को प्राणदण्ड न दें। उनके अपराध को क्षमा कर दें। अपराधी के अपराधों को क्षमा करने में जो आनंद है वह उसे दण्ड देने में नहीं मिलता।"

सम्राट अशोक ने कुणाल की बातों पर खूब सोच-विचार करने के बाद घोषणा की, "अपने प्रिय पुत्र कुणाल की नीति को परखने के लिए मैं महारानी को दी गई प्राणदण्ड की आज्ञा रद्द करता हूँ। साथ ही आज मैं अपने सभी कर्मचारियों व गुप्तचरों को सूचना देता हूँ कि वे मुझे प्रजा के हालचाल से हर समय सूचित करते रहें। चाहे मैं खाता होऊँ, सोता होऊँ, सवारी कर रहा होऊँ या महलों में बैठा होऊँ, मुझे सभी कार्यक्रमों की सूचना दी जाए। सब जगह, सब समय की सूचना मुझे मिलनी चाहिए। मैं फिर कभी ऐसे षड्यंत्रों से बे-खबर नहीं रहना चाहता। हर घड़ी के समाचारों

से मुझे सूचित किया जाए।"[1]

इस घोषणा के बाद सम्राट अशोक ने कुणाल को गले लगाया। इसी समय महामंत्री राधागुप्त ने कहा, "सम्राट, आपने अपने राज्य में तथा संसार के सभी मित्र राज्यों में पशुओं की चिकित्सा के लिए चिकित्सालय खोले हैं। इन चिकित्सालयों के लिए जहाँ-जहाँ औषधियाँ नहीं थीं, वहाँ-वहाँ मँगायी गई हैं। अनेक स्थानों पर तो उनके वृक्ष तक लगवा दिए गए हैं।[2] संसार के सभी प्राणी इनसे नया जीवन पा रहे हैं। तब क्या, इन चिकित्सालयों में कोई भी ऐसा चिकित्सक नहीं है, जो कुणाल की आँखें फिर से लगा सके ? सम्राट, यदि आप आज्ञा दें तो मैं ऐसे कुशल चिकित्सक की खोज करूँ।"

महामंत्री राधागुप्त आज्ञा मिलने की बाट जोहने में ही लगे थे कि आचार्य उपगुप्त ने राजसभा में प्रवेश किया। वे एकदम स्थिति को समझ बोले, "कुशल चिकित्सक को खोजने की आवश्यकता नहीं है, महामंत्री ! मैं आ गया हूँ। भगवान बुद्ध की दया से अभी कुणाल को आँखों की रोशनी वापस मिल जाएगी।"

आचार्य उपगुप्त की बातों को सुनकर सभी सभासदों के हृदयों में विश्वास की लहर दौड़ गई। उन सबके मुख पर प्रसन्नता की चमक दिखलाई दी। इसी बीच में आचार्य उपगुप्त ने एक सोने के बर्तन में जल मँगवाया। उस जल में उन्होंने कुणाल की निकाली गई आँखों को डाल दिया। इसके बाद वे भगवान बुद्ध के ध्यान में मग्न हो गए। काफी देर बाद उन्होंने अपने नेत्र खोले। फिर कटोरे में से आँखें निकालकर उन्हें कुणाल की आँखों के स्थान पर रख दिया। आँखें लगते ही कुणाल की नेत्र-ज्योति वापस आ गई। सभी उपस्थित सभासद यह अनोखा जादू देखकर आश्चर्य में डूब गए। सम्राट अशोक की स्थिति तो अजीब थी। वे आचार्य उपगुप्त के इस आत्मबल की प्रशंसा मन-ही-मन कर उठे। उधर महारानी तिष्यरक्षिता का बुरा हाल था। वे दोषी होने के कारण लज्जा से गड़ी जा रही थीं। सम्राट अशोक ने सारी स्थिति को भांप लिया।

---

1. अशोक का छठा शिलालेख।
2. अशोक के दूसरे शिलालेख का उद्धरण।

उन्होंने महामंत्री राधागुप्त से कहा, "महामंत्री, मैं इस अवसर की याद को अमर बनाना चाहता हूँ। इसलिए, जहाँ मेरे पुत्र कुणाल के नेत्र निकाले गए थे, वहाँ एक स्तूप बना दिया जावे। साथ ही मैं प्रजा में धर्म की वृद्धि के लिए आज से एक नए प्रकार के कर्मचारियों की नियुक्ति करता हूँ। इनका नाम धर्ममहामात्र होगा। ये कर्मचारी मेरी प्रजा के सुख और हित का ध्यान रखेंगे। स्वामी और सेवक, ब्राह्मण और धनवानों तथा अनाथ और वृद्धों की लोभ-लालसा को दूर करना इनका काम होगा। मेरे महलों की रानियों, भाई-बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारों को इनकी नियुक्ति से अब कोई कष्ट नहीं पहुँचेगा। मेरे जीते हुए प्रदेशों में भी ये प्रजा के धर्माचरण को देखेंगे। मेरी प्रजा दान देने में कितना प्रेम रखती है, ये देखना भी इन कर्मचारियों का काम होगा। अब मेरी प्रजा इन कर्मचारियों के नियुक्त हो जाने पर अन्याय और अत्याचार से डरेगी।"[1]

सम्राट अशोक की इस घोषणा का तुरंत ही राजसभा ने स्वागत किया।

कुणाल के जहाँ नेत्र निकाले गए थे, वहाँ एक स्तूप बनवा दिया गया। प्रजा के सुख और हित की रक्षा करने के लिए सब जगह धर्ममहामात्र नियुक्त कर दिए गए। धर्ममहामात्रों की नियुक्ति बौद्ध, जैन, ब्राह्मण आदि सभी सम्प्रदायों के लोगों में से की गई। सभी धर्मों के हितों की रक्षा करना, प्रजा में राजा के प्रति विश्वास उत्पन्न करना, प्रजा के कष्टों को दूर करना, जनहित के कार्य करना तथा अधिकारियों की मनमानी और अत्याचारों को मिटाना इनका काम था। ये धर्ममहामात्र स्त्री और पुरुष दोनों ही में थे। प्रजा को सुख पहुँचाने के लिए सम्राट अशोक ने अन्य कर्मचारी भी नियुक्त किए।

---

1. अशोक का पाँचवाँ शिलालेख।

9

सम्राट अशोक की राजनीति धर्म में पूरी तरह से पग चुकी थी। उन्होंने मानव-कल्याण के लिए जिस धर्म को अपनाया वह वैदिक धर्म ही था। पर इस धर्म में बौद्धधर्म की कुछ झलक दिखलाई पड़ती है। यह धर्म किसी भी सम्प्रदाय से संबंधित न था। यह सब धर्मों का सार था। अशोक ने अपनी महत्ता के बल पर सब धर्मों और सम्प्रदायों को एक-सूत्र में बाँध लिया। यही अशोक की महत्ता का बेजोड़ प्रमाण है। अशोक ने इसी मानव-धर्म को अपनाकर शासन किया, प्रजा का पालन किया, प्रजा को सुख पहुँचाया और प्रजा की रक्षा की। इसी धर्म पर आधारित नीतियों को अपनाकर सम्राट ने राजकाज किया। उनकी कुछ धर्मनीतियाँ इस प्रकार हैं—

धर्मविजय—कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने शस्त्रों को त्याग दिया। मनुष्यों पर विजय पाने के लिए सत्य, अहिंसा और प्रेम की नीति को अपनाया। सम्राट अशोक ने इस नीति को अपनाकर संसार भर में विजय पाई। मानव-मात्र के हृदय को जीत लिया। उन्होंने प्रजा को भी अहिंसा का तन, मन और कर्म से पालन करने का उपदेश दिया।

धर्ममंगल—मनुष्य स्वार्थ को छोड़ सबके सुख की कामना करे, सम्राट अशोक इसे ही धर्म मानते थे। सम्राट अशोक के अनुसार लोग विपत्ति में, पुत्र तथा कन्या के विवाह में, पुत्र-जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे अवसरों पर अनेक प्रकार के बहुत से ऊँचे और नीचे मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर बहुत प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचारों का कोई फल नहीं होता। परंतु, उस मंगलाचार का बहुत फल होता है जो धर्म-मंगल होता है। धर्म-मंगल के कार्य करने से स्वर्ग

प्राप्त हो सकता है।[1] सम्राट अशोक ने धर्म-मंगल के लिए स्तम्भ, स्तूप और शिलालेखों पर धर्मलेख लिखवाए। बौद्ध विहार और मठों की स्थापना की। बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए संसार भर में भिक्षुओं को भेजा।

धर्मदान—सम्राट अशोक दासों और नौकरों के साथ उचित व्यवहार, माता-पिता की सेवा, मित्र, परिचित, संबंधी, सहायकों, ब्राह्मणों और श्रमण साधुओं के प्रति उदारता और अहिंसा को धर्मदान मानते थे।[2] उन्होंने धर्म की उन्नति के लिए अपना सर्वस्व दान कर दिया।

धर्मघोष—मनुष्यों के कल्याण के लिए सम्राट अशोक ने धर्माचरण की शिक्षा दी। भगवान बुद्ध की वाणी और उपदेशों को स्तम्भों और स्तूपों पर खुदवाया।

धर्मानुष्ठान—प्रजा की हर प्रकार की उन्नति के लिए सम्राट ने त्याग किए। प्रजा का सब प्रकार से कल्याण करना अपना कर्त्तव्य समझा।

धर्मयात्रा—प्रजा के कल्याण के लिए धर्मयात्राएँ कीं। सभी तीर्थों के सम्राट ने दर्शन किए। इसके अतिरिक्त इन धर्मयात्राओं में सम्राट अशोक ने ब्राह्मणों, श्रमणों और वृद्धों के दर्शन किए। उन्हें स्वर्णदान दिए। ग्रामवासियों को धर्म का उपदेश दिया गया।[3]

धर्मानुग्रह—धर्म का पालन करने में प्रजा को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी गईं। तीर्थों तक जाने के मार्ग बनवाए गए। रास्तों में छाया के लिए पेड़ लगवाए गए और पीने के लिए पानी के कुएँ खोदे गए। अनेक स्थानों पर धर्मशालाएँ बनवाई गईं। मनुष्यों और पशुओं के लिए अस्पताल खोले गए। धर्म संबंधी कार्यों के देखने के लिए धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की गई।

धर्म-यश—सच्चा यश धर्म का आचरण करने पर मिलता है। सम्राट अशोक ने प्रजा को धर्माचरण करने का उपदेश दिया। सम्राट ने स्वयं भी धर्माचरण का उच्चतम आदर्श उपस्थित किया।

सम्राट अशोक जीवन भर इन्हीं सिद्धांतों पर चलते रहे। उनकी इन

---

1. अशोक का नवम शिलालेख।
2. अशोक का ग्यारहवाँ शिलालेख।
3. अशोक का आठवाँ शिलालेख।
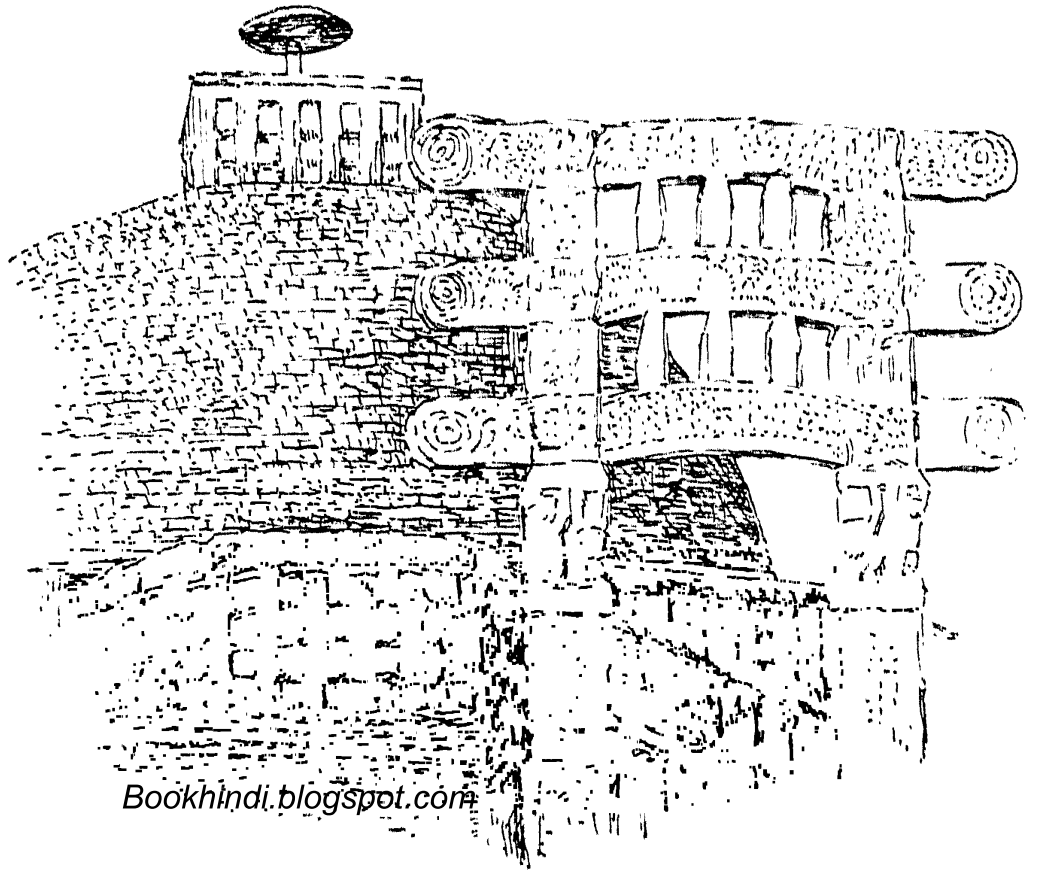
धर्म नीतियों से धर्मों के भेदभाव, आपसी कलह और मन-मुटाव मिट गए। इससे हिंदू, जैन और बौद्ध इत्यादि धर्मों में सहिष्णुता बढ़ी। धार्मिक वाद-विवादों का अंत हो गया।

❄ ❄ ❄

समय बीत चला। सम्राट अशोक के राज्य में सारी प्रजा सुख से रहने लगी। सम्राट अशोक को भी कुछ संतोष और सुख मिला। अब वे प्रजा की उन्नति के स्थान पर धर्म की उन्नति को अधिक महत्त्व देने की सोचने लगे। इसी बीच में बौद्ध धर्म में फूट और झगड़ों का समाचार सम्राट ने सुना। उन्होंने तुरंत ही घोषणा की, "मैंने बौद्धधर्म की उन्नति के लिए परिश्रम किया है। संघ को एक किया है। जो भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालेगा उसे संघ से बाहर कर दिया जाएगा। बौद्धधर्म की उन्नति

को रोकने का जो भिक्षुणी या भिक्षु कलंक लेगा, उसे श्वेतवस्त्र पहनाकर धर्म से निकाल दिया जाएगा।''[1]

इस घोषणा के बाद भी बौद्धधर्म के झगड़े बंद नहीं हुए। वे चलते रहे। अंत में एक दिन अशोक ने राजदरबार किया। उसमें उन्होंने पूछा, ''सभासदो ! इस विशाल साम्राज्य का स्वामी कौन है ?''

सम्राट के इस अजीब प्रश्न को सुनकर सभी सभासद चक्कर में पड़ गए। उनसे कुछ उत्तर देते न बना। काफी देर शांति रही। अंत में सभी ने एकस्वर में कहा, ''सम्राट, यह साम्राज्य आपका है। आप इसके स्वामी हैं।''

इस उत्तर को सुनकर सम्राट अशोक गंभीर होकर बोले, ''यह विशाल

साम्राज्य जिसकी आरती साँझ-सवेरे चंदा और सूरज करते हैं, मेरा नहीं है। जिस साम्राज्य की धरती सोना उगलती है, जहाँ की नदियाँ कल-कल करती बहती हैं, मेरा कैसे हो सकता है ? यह साम्राज्य आपका है। मैं इसे अपनी सभा को सौंपता हूँ। आज से मैं धर्म की उन्नति के लिए भिक्षु बनकर बौद्धविहार में रहना चाहता हूँ। धर्म की उन्नति राजा बनकर नहीं हो सकती। आज से आप सब राज्यभार सँभाल लें।''

सभी सभासदों ने सम्राट की गंभीर घोषणा सुनी। सब ने सोच-विचार कर कहा, ''सम्राट, आप अपने विचारों पर अटल रहते हैं, यह हम जानते हैं। पर, आप राज्य-भार छोड़ने से पहले अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करें। विशाल साम्राज्य की देखभाल सभा के बस से बाहर की बात है। साथ ही साम्राज्यों की शोभा सम्राट से ही है।''

''तो, सभासदो, मैं युवराज कुणाल के पुत्र सम्प्रति को अपना उत्तराधिकारी घोषित करता हूँ। वह ही इस साम्राज्य का आज से सम्राट होगा।'' कहते-कहते सम्राट अशोक का गला रुँध गया। उनकी आवाज भारी हो गई। उन्होंने घोषणा के बाद राजसिंहासन त्याग दिया। राजमहलों को छोड़कर पाटलिपुत्र के बौद्ध-विहार में चले गए। इधर सम्प्रति राजसिंहासन पर बैठा।

---

1. सारनाथ व साँची का लघु स्तम्भ लेख।

10

सम्राट अशोक अब राजकाज को पूरी तरह से छोड़कर धर्मप्रचार में लग गए। उन्होंने प्रजा के हित के लिए धर्मप्रचार को ही चुना। धर्मप्रचार के लिए उन्होंने महान त्याग किए। अपना राजसिंहासन छोड़ा। वे धर्म के द्वारा मनुष्यों के हृदय को शुद्ध बनाना चाहते थे। शांति, सत्य और अहिंसा का प्रचार वे इसी धर्म के द्वारा करने के इच्छुक थे। उनके विचारों में मनुष्य का चरित्र धर्म को अपना कर ही अच्छा बन सकता था। इसी से सुख मिल सकता है।

बौद्ध-विहार में रहकर अशोक ने धर्मप्रचार के लिए अथक परिश्रम किया। उन्होंने बौद्ध सभा का आयोजन किया और घोषणा की : "धर्म के दान से बढ़कर कोई दान नहीं है। धर्म के दान से मनुष्य को पुण्य मिलता है। मनुष्य इस पुण्य का परलोक में भी भागी होता है। अतः मैं धर्म के लिए अपने प्रिय पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को दान करता हूँ।"[1]

इसी सभा ने बौद्धधर्म के प्रचार के लिए महान योजना तैयार की। बौद्धधर्म के प्रचार के लिए सभा की सम्पत्ति से अशोक ने सभी देशों में भिक्षुओं को भेजा।

कश्मीर और गान्धार में भिक्षु मज्झन्तिक गए। भिक्षुक मज्झन्तिक ने वहाँ के राजा और प्रजा को धर्म के सिद्धांत समझाए। राजा और प्रजा दोनों ही भिक्षु मज्झन्तिक के उपदेशों को सुनकर मंत्रमुग्ध हो गए। वहाँ पर अस्सी हजार मनुष्यों ने बौद्धधर्म को स्वीकार किया। आज भी इन दोनों क्षेत्रों के

1. अशोक का ग्यारहवाँ शिलालेख।

लोगों में बुद्ध, धर्म और संघ तीनों के प्रति अपार श्रद्धा दीख पड़ती है।

महिसा-मण्डल (मैसूर) में भिक्षु महादेव गए। वहाँ पर उन्होंने अपने प्रभाव से चालीस हजार मनुष्यों को बौद्ध बनाया।

दक्षिण-भारत के कर्नाटक क्षेत्र और वनवास में भिक्षु रक्षित गए। इस प्रदेश में उन्होंने बौद्ध धर्म का खूब प्रचार किया। बौद्ध-भिक्षुओं के रहने के लिए पाँच हजार विहार बनवाए। साठ हजार मनुष्यों को बौद्ध बनाया।

महाराष्ट्र प्रदेश में आचार्य महाधर्मरक्षित गए। उन्होंने वहाँ की प्रजा में सत्य, शांति और अहिंसा का प्रचार किया। चौरासी हजार मनुष्यों को बौद्ध बनाया।

मझिम और कस्यप नाम के दो भिक्षु हिमालय प्रदेश में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने भगवान गौतम बुद्ध की महिमा बतलायी। इन्होंने अस्सी हजार मनुष्यों को बौद्ध बनाया।

सुवर्णभूमि में सोण और उत्तर नाम के दो भिक्षु गए। इन्होंने छः लाख नर-नारियों को धर्म की शिक्षा दी।

इसके अतिरिक्त यवनदेश, कोंकण प्रदेश, चीन और तिब्बत में भी अनेक भिक्षु धर्मप्रचार के लिए भेजे गए।

लंका में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अशोक का बड़ा पुत्र महेन्द्र गया। उसके साथ चार भिक्षु और गए।

महेन्द्र ने लंका के सम्राट तिष्य को उनके चालीस हजार साथियों सहित बौद्धधर्म की दीक्षा दी। लंका की राजकुमारी अनुला भी बौद्धधर्म ग्रहण करना चाहती थी। उसे बौद्धधर्म की दीक्षा देने के लिए सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा लंका आई। वह अपने साथ बोधिवृक्ष की शाखा भी ले गई थीं। वह उसी पीपल के पेड़ की शाखा थी, जिसकी छाया में बैठकर भगवान गौतम बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस बोधिवृक्ष की शाखा को सम्राट ने काटा था। वे इसे बौद्ध-गया से पाटलिपुत्र तक अपने सिर पर रखकर लाए थे। संघमित्रा के लंका जाते समय उन्होंने गंगा के जल में खड़े होकर वह शाखा जहाज पर रखी। जब तक उन्हें यह जहाज जाता दिखाई पड़ा, तब तक सम्राट अशोक जल में खड़े उसे भक्ति-भाव से देखते रहे।

संघमित्रा अन्य बौद्ध-भिक्षुणियों के साथ समुद्रमार्ग से जहाज द्वारा लंका पहुँची। लंका में पहुँचते ही उसका महान स्वागत किया गया। लंका की राजकुमारी अनुला बन्दरगाह पर संघमित्रा को लेने पहुँची।

बोधिवृक्ष की शाखा लंका द्वीप में अनुराधापुर के महाविहार में रोपी गई। सारे द्वीप में आनंद और उल्लास की लहर दौड़ गई। इस खुशी में अनेक दिनों तक सारे द्वीप में उत्सवों और धार्मिक कार्यों की धूम रही। संघमित्रा ने लंका की राजकुमारी अनुला को बौद्धधर्म की दीक्षा दी। अनुला ने अपनी पाँच सौ सखियों के साथ बौद्धधर्म ग्रहण किया। वह बौद्धसंघ की प्रमुख भिक्षुणी बनी।

बोधिवृक्ष की शाखा आज भी लंका में लहलहा रही है। आजकल यह विशाल वृक्ष 'श्री जय महाबोधि' के नाम से प्रसिद्ध है। लगभग 2250 वर्ष बीत जाने पर भी इस वृक्ष को अभी तक बुढ़ापे ने नहीं सताया। इस वृक्ष में न केवल लंका के ही, वरन् सारे संसार के बौद्धों की अपूर्व भक्ति दीख पड़ती है।
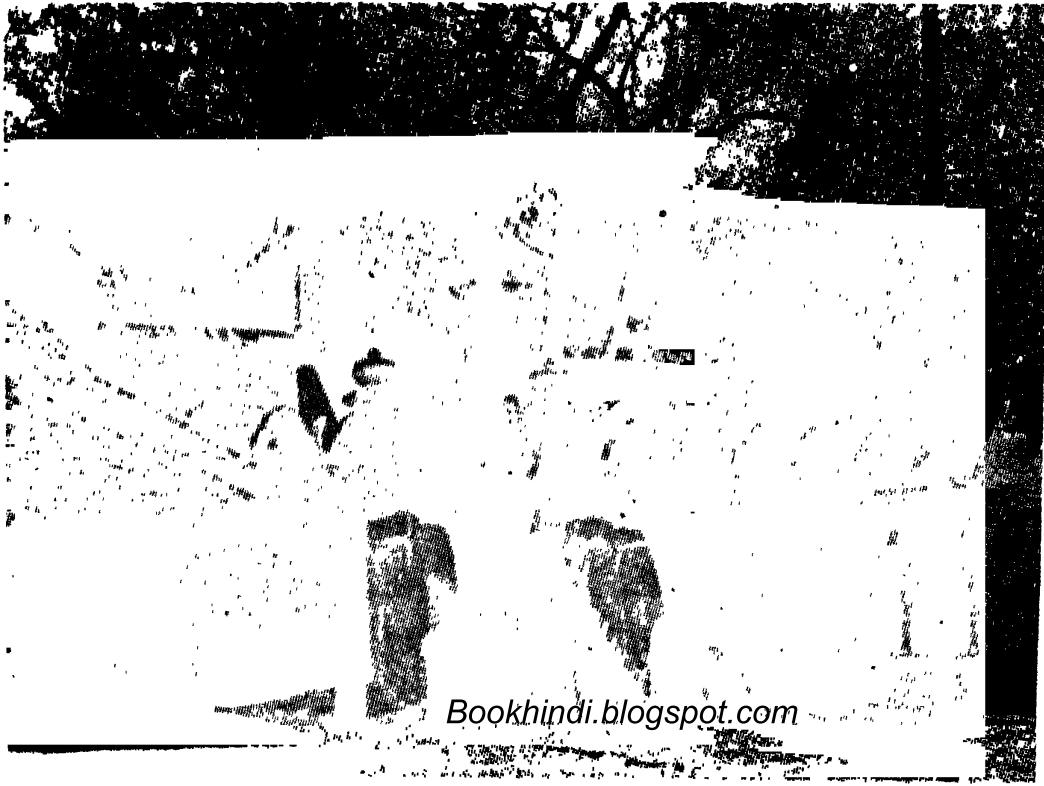
लंका में स्थित बोधिवृक्ष की शाखा से 2250 साल पहले रोपा गया
'श्री जय महाबोधि' वृक्ष का वर्तमान रूपाकार।

लंका के राजा तिष्य की सहायता से बौद्धधर्म का खूब प्रचार हुआ। बौद्ध भिक्षुओं के लिए अनेक विहारों का निर्माण किया गया। महेन्द्र के परिश्रम से ही लंका में धर्म का प्रचार फैला। इसी कारण से वह लंका के धर्मग्रन्थों में 'लंका का दीपक' कहलाया।

❄ ❄ ❄

धर्म के प्रचार के लिए सम्राट अशोक हर पाँचवें वर्ष धर्म-महा-सम्मेलन का भी आयोजन करते थे। इस सम्मेलन में ढोंगी और पाखण्डी बौद्ध-भिक्षुओं की परीक्षा होती थी। परीक्षा में असफल होने वाले भिक्षुओं के पीले वस्त्र और खड़ाऊँ छीन ली जाती थीं। उन्हें सफेद कपड़े पहिनाकर संघ से बाहर निकाल दिया जाता था। ऐसे सभी भिक्षुओं को घर-गृहस्थी को अपनाने के लिए जोर दिया जाता था। इसका उद्देश्य यही था कि

धर्म के नाम पर आडम्बर और बुरे विचार न फैलने पावें। अशोक ने अनुभ
के द्वारा जान लिया था कि सच्चा धर्म लोगों के मन में रहता है। अत
धर्म के नाम पर बाहरी दिखावे बेकार हैं। बस इसी के लिए वे परिश्र
करते रहे।

एक बार धर्म महासम्मेलन के लिए धन की आवश्यकता पड़ी। सम्रा
अशोक ने अपने पौत्र सम्प्रति के पास धन लेने के लिए भिक्षुओं को भेजा।
सम्प्रति का स्वभाव तेज था। उसका व्यवहार रूखा था। उसने भिक्षुअ
को एक खाली मिट्टी का पात्र देते हुए कहा, "धन, कहाँ है धन
तुम्हारे सम्राट अशोक सारा राजकोष पहले ही खाली कर गए हैं। राज

की अनेक आमदनी वाली जागीरें तुम्हारे विहारों के नाम हैं। राजको
खोखला हो चुका है। लो राजकोष में यह खाली मिट्टी का पात्र बच
है। इसे तुम धन समझ कर यदि चाहो तो ले सकते हो।"

सम्राट अशोक इस घटना को सुनते ही अवाक् रह गए। उनके चेह
पर सदा के लिए गम्भीरता आ विराजी। भर्राये स्वर में वे बोले, "मे
पौत्र ने मिट्टी का खाली पात्र मुझे दिया। ठीक ही है। मेरा शरीर भ
तो मिट्टी का है। वह भी तो इस मिट्टी के पात्र की भाँति मिटने वाल
है। फिर परिवर्तन का नाम ही तो जीवन है। यही तो बौद्धधर्म का सा
है।" और कहते-कहते सम्राट अशोक मौन हो गए।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद—लगभग 72 वर्ष की आयु में सम्रा
अशोक इस संसार को छोड़ गए।

सम्राट अशोक भारत के इतिहास में आज भी अमर हैं। उनके अथक
परिश्रम की कहानी आज ढाई हजार वर्ष बाद भी संसार में जीवित है
उनके द्वारा शांति, सत्य और अहिंसा की अपनायी गई नीतियाँ बारूद के
ढेर पर बैठे संसार को विनाश से बचाने वाली हैं। सम्राट अशोक ने सा
संसार को मानवता का उपदेश दिया। जाति-पाँति के भेदभाव और छुआछूत
के विचारों को मनुष्यों के मन से निकालकर प्रेम और सेवा का भाव भ
दिया। वे संसार के इतिहास में हजारों, करोड़ों राजाओं के बीच जगमगाते
नक्षत्र हैं।